राजकमल पेपरबैक्स

सुधीर विद्यार्थी

अशफ़ाक़ उल्ला और उनका युग

9.3

अशफाक उल्ला और उनका युग

सुधीर विद्यार्थी

जन्म : 1 अक्तूबर, 1953 ई.। जन्मस्थान : उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर जिले का खुदागंज नामक गाँव। शिक्षा : रूहेलखंड विश्वविद्यालय से इतिहास में एम.ए.।

यशपाल और मन्मथनाथ गुप्त के बाद भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास-लेखकों में सुपरिचित। शहीदों की कीर्ति-रक्षा के लिए पं. बनारसीदास चतुर्वेदी की परंपरा से प्रतिबद्ध जीवनी और संस्मरणकार। क्रांतिकारियों के आदर्शों और सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित। बाएँ बाज़ू के हामी, और लेखन में सहजता के पक्षधर। शहीदों के विचारों, खासकर भगतसिंह की प्रासंगिकता की जोरदार हिमायत।

1985 से अनियतकालीन साहित्यिक पत्रिका 'संदर्श' का संपादन। 'जन संस्कृति मंच' की राष्ट्रीय परिषद के सदस्य। एक बड़े कर्मचारी संगठन का प्रांतीय नेतृत्व। इसी के तहत एक बार जेल-यात्रा। शीर्षस्थ पत्र-पत्रिकाओं में अनेक शोधपूर्ण लेखों, संस्मरणों, साक्षात्कारों और यात्रावृत्तांतों का प्रकाशन। अनेक लेखों का पंजाबी, उर्दू आदि में अनुवाद। 'अशफाक उल्ला और उनका युग' का मलयालम अनुवाद केरल हिंदी विद्यापीठ से शीघ्र प्रकाश्य।

आवरणचित्र

अमिताभ दास : (जन्म 1947, दिल्ली) की चित्रकृति 'तेज हवा में आकृति'। दिल्ली के ललित कला महाविद्यालय में शिक्षा, फिर वहीं कुछ समय तक अध्यापन। आजकल राष्ट्रीय व्यापार मेला प्राधिकरण (दिल्ली) से सम्बद्ध। 1976 में ललित कला अकादेमी का राष्ट्रीय पुरस्कार ।

साहित्य, फिल्म, नाटक, संगीत में भी गहरी दिलचस्पी। युवा चित्रकारों में एक महत्वपूर्ण नाम। हवा, बादल, धूप, चन्द्रमा आदि के सांकेतिक और संवेदनशील अंकन के बीच अक्सर एक दृढ़ मानव-आकृति की रचना। इस लोक में आदमी के आने, रहने पर मर्मस्पर्शी टिप्पणियाँ। चित्रों में काव्यात्मक रंग-रूप। देश-विदेश में कई चित्र-प्रदर्शनियाँ की हैं।

सुधीर विद्यार्थी

अशफ़ाक़उल्ला और उनका युग

पहला पुस्तकालय संस्करण
संदर्भ प्रकाशन, शाहजहाँपुर से
1988 में प्रकाशित

राजकमल पेपरबैक्स में
पहला संस्करण : 1991

राजकमल पेपरबैक्स : उत्कृष्ट साहित्य के जन-सुलभ संस्करण

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली-110 002
द्वारा प्रकाशित

पाठ्यभाग मेहरा ऑफसेट प्रेस,
नई दिल्ली-2 द्वारा, तथा
आवरण मॉडर्न प्रिंटर्स, दिल्ली-9
द्वारा मुद्रित

मूल्य : रु. 25.00
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.

दास

ASHFAKULLA AUR UNKA YUG
by Sudhir Vidyarthi

ISBN : 81-7178-196-9

बेटे चन्दन की
स्मृति को
जिसने उम्र के सिर्फ
12 वसन्त देखे

क्रम

अपनी बात

पूछा जा सकता है कि आज से पचास-साठ वर्ष पूर्व जिन मुट्ठी-भर क्रांतिकारियों ने देश की स्वतंत्रता के लिए एक समझौता-विहीन संग्राम किया था, उनके सिद्धांत और आदर्श आज हमारे लिए कितने प्रासंगिक और उपयोगी हैं । अरसा हो गया और तब से अब तक महानदियों में काफी पानी बह चुका है । समय और परिस्थितियों में निरंतर तेजी से बदलाव आया है । अतः इसे समझने के लिए हमें उन नौजवानों और उनके समझौताविहीन संग्राम पर एक दृष्टि डालनी होगी । हमें यह देखना होगा कि जिस आजादी के लिए वे संघर्ष कर रहे थे, दरअसल वह आजादी क्या थी और किसके लिए थी । अक्सर पूछा जाता है कि बम फेंकने या वायसराय पर गोली चलानेवाले वे युवक जो फाँसी पर चढ़ा दिए गए या काला पानी की नारकीय यातनाओं में सड़ते रहे, क्या उन लोगों के पास स्वतंत्र भारत का कोई ऐसा नक्शा था जिसके लिए उन्होंने संघर्ष का रास्ता अपनाया । इस बात को यहाँ कहने की आवश्यकता विशेषकर इसलिए है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद क्रांतिकारियों के इतिहास को धूमिल करने और उसे मिटा देने का एक लंबा अभियान चलाया गया और इस षड्यंत्र में कुछ इतिहास-लेखक भी सम्मिलित हो गए । पर उस सुनहरे इतिहास को जितना दबाया गया, जनता में क्रांतिकारियों के प्रति उतनी ही दिलचस्पी बढ़ती गई । मेरे एक मित्र ने पिछले दिनों कहा भी कि देखा जा सकता है—एक बहुत घिसा

हुआ उदाहरण—गाँधी बनाम भगतसिंह का । क्या नहीं किया गया है, गाँधी के लिए । प्रचार-प्रसार-प्रकाशन से लेकर संग्रहालय तक । लेकिन वह 'हिंसक छोकरा' भगतसिंह बिना किसी 'भवन' के भी लोगों के दिलों पर राज कर रहा है । क्या यह किसी संस्कृति की शक्ति के कारण नहीं है ? आजादी के पश्चात हमारे समाज में जिस तरह की मूल्यहीन राजनीति का चलन हुआ, उससे जनता का मोहभंग होना स्वाभाविक था । यह बहुत सुखद है कि लोगों ने अब क्रांतिकारियों की त्याग और बलिदान की राजनीति की ओर देखना शुरू कर दिया है ।

क्रांतिकारी अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ काकोरी युग की इसी बलिदानी राजनीति की उपज थे । वे 1927 में हिंदू-मुस्लिम एकता तथा स्वतंत्र भारत का सपना लेकर अपने दल के नेता पं. रामप्रसाद बिस्मिल, ठाकुर रोशनसिंह और राजेंद्र नाथ लाहिड़ी के साथ फाँसी पर चढ़ गए । आर्यसमाजी विचारों के रामप्रसाद बिस्मिल और अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ की मित्रता और मातृभूमि की आजादी के लिए उनका एक साथ शहीद हो जाना सांप्रदायिक सद्भाव और हमारे इतिहास की बहुत बड़ी विरासत है, जिसे जानना आज अधिक जरूरी हो गया है ।

काकोरी युग के क्रांतिकारियों में अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ सबसे अधिक प्रगतिशील विचारों के थे । जेल से लिखे उनके पत्र और अन्य दस्तावेज इसका प्रमाण हैं । वह 1921 के असहयोग आंदोलन के बाद का समय था और काकोरी की घटना का इतिहास में इसलिए भी महत्त्व है, क्योंकि उसने 'महात्मा गाँधी' के उस प्रथम आंदोलन की असफलता के बाद राजनैतिक शून्य को भरा और देश का ध्यान सांप्रदायिकता की ओर से मोड़कर संग्राम की ओर लगाया । काकोरी के क्रांतिकारियों ने यद्यपि उस समय तक समाजवाद को अपना लक्ष्य घोषित नहीं किया था, जैसा कि आगे चलकर भगतसिंह के युग में हुआ, पर उनके दल के संविधान और दूसरे प्राप्त दस्तावेजों से स्पष्ट है कि समाजवाद की ओर चलने की तैयारी उन्होंने शुरू कर दी थी । अशफ़ाक़उल्ला ने तो अपने दल के लोगों से बहुत आगे बढ़कर यह बता दिया था कि वे समाजवादी समाज

का निर्माण करना चाहते हैं । उन्होंने कहा था–"मैं हिंदुस्तान की ऐसी आज़ादी का ख़्वाहिशमंद था जिसमें गरीब खुश और आराम से रहते और सब बराबर होते । खुदा मेरे बाद वह दिन जल्द लाए जबकि छत्तर मंजिल लखनऊ में अब्दुल्ला मिस्त्री लोको वर्कशॉप और धनिया चमार, किसान भी, मिस्टर ख़लीकउज़्ज़माँ और जगतनारायण मुल्ला व राजा साहब महमूदाबाद के सामने कुर्सी पर बैठे हुए नजर पड़ें ।"

अशफ़ाक़उल्ला ने बहुत स्पष्ट तौर पर स्वदेशी, सांप्रदायिक सद्भाव, समाजवाद और जनजागरण की बात कही । आश्चर्य होता है कि वे उस युग में प्रगतिशीलता की कितनी ऊँचाई पर थे । उन्होंने भगतसिंह से पहले यह कहा–"अगर हिंदुस्तान आजाद हुआ और बजाए हमारे गोरे आकाओं के हमारे वतनी भाई सल्तनत व हुकूमत की बागडोर अपने हाथ में ले लें और तफ़रीकोतमीज़–अमीर व गरीब, जमींदार व काश्तकार में रहे तो ऐ खुदा, मुझे ऐसी आज़ादी उस वक्त तक न देना जब तक तेरी मख़लूक में मसावात (बराबरी) कायम न हो जाए । मेरे इन ख्यालात से मुझको इश्तिराकी (कम्युनिस्ट) समझा जाए तो मुझे इसकी फ़िकर नहीं ।"

अशफ़ाक़उल्ला जानते थे कि यदि देश की लड़ाई लड़नी है तो मजदूरों, किसानों और सामान्य जनता को आगे लाना होगा और उन्हें लड़ाई के लिए संगठित करना होगा । उन्होंने लिखा है–"मेरा दिल गरीब किसानों और दुखिया मज़दूरों के लिए हमेशा दुखी रहा है । मैं तो अपने अय्यामे फ़रारी में भी अक्सर इनकी हालत देखकर रोया किया हूँ क्योंकि मुझे इनके साथ दिन गुजारने का मौका मिला है । मुझसे पूछो तो मैं कहूँगा कि मेरा बस हो तो मैं दुनिया की हर मुमकिन चीज़ इनके लिए वक़्फ़ कर दूँ । हमारे शहरों की रौनक इनके दम से है । हमारे कारखाने इनकी वजह से आबाद और काम कर रहे हैं । हमारे पंपों से इनके ही हाथ पानी निकालते हैं, ग़र्ज की दुनिया का हर एक काम इनकी वजह से हुआ करता है । गरीब किसान बरसात के मूसलाधार पानी और जेठ-बैसाख की तपती दोपहर में भी खेतों पर जमा होते हैं और जंगल में मँडलाते

हुए हमारी खुराक का सामान पैदा करते हैं । यह बिलकुल सच है कि वह जो पैदा करते हैं या वह जो बनाते हैं, उनमें उनका हिस्सा नहीं होता, हमेशा दुखी और मफ़लूक़ुल हाल रहते हैं । मैं इत्तिफाक़ करता हूँ कि इन तमाम बातों के लिए जिम्मेदार हमारे आका और उनके एजेंट हैं । मगर इनका इलाज क्या है कि उनको उस हालत पर ले आएँ कि वह महसूस करने लगें कि वह क्या हैं । इसका वाहिद जरिया यह है कि तुम उन जैसी वज़ा-किता इख्तियार करो और जंटिलमैनी छोड़कर देहात का चक्कर लगाओ । कारखानों में डेरे डालो और उनकी हालत स्टडी करो और उनमें एहसास पैदा करो । तुम कैथरीन, ग्रांड मदर ऑफ़ रशिया की सवानेहउम्री (जीवन चरित्र) पढ़ो और वहाँ नौजवानों की कुर्बानियाँ देखो । तुम कॉलर, टाई और उम्दा सूट पहनकर लीडर जरूर बन सकते हो, मगर किसानों और मजदूरों के लिए फायदेमंद साबित नहीं हो सकते ।"

भगतसिंह ने आगे चलकर क्रांतिकारियों के इसी संघर्ष को आगे बढ़ाया और समाजवाद की लड़ाई को बहुत दूर तक ले गए । यहाँ यह देखने योग्य है कि अशफ़ाक़उल्ला के समाजवाद के लक्ष्य को पाने के लिए भगतसिंह ने कल्पना की भूलभुलैयों से निकलकर अपने चिंतन को वैज्ञानिक बनाया । क्रांतिकारी आंदोलन के विकास के साथ-साथ विचार का भी विकास हुआ और भगतसिंह-युग के क्रांतिकारियों के चिंतन में गुणात्मक परिवर्तन आया । उन्होंने देश की प्रत्येक समस्या पर खुलकर अपने विचार प्रकट किए । भगतसिंह ने यहाँ तक कहा कि किसी समाज और देश को पहचानने के लिए उस समाज अथवा देश के साहित्य के साथ परिचित होने की सर्वाधिक आवश्यकता होती है, क्योंकि समाज के प्राणों की चेतना उस समाज के साहित्य में ही प्रकट हुआ करती है । यही नहीं, उन्होंने 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' जैसा निबंध लिखा । उन्होंने क्रांतिकारी दल के नाम में 'समाजवाद' शब्द जोड़कर क्रांतिकारियों के इतिहास को अनूठा बनाया । उन्होंने आजादी की व्याख्या यह की कि हम मार्क्सवाद के आधार पर मजदूर राज चाहते हैं । पर भगतसिंह की शहादत के

बाद क्रांतिकारियों के समाजवादी समाज के निर्माण का उद्देश्य वहीं ठहर गया । आज जरूरत इस बात की है कि देश की नई पीढ़ी इस लड़ाई को अपने हाथ में ले ले और आगे बढ़ाए ।

अशफ़ाक़उल्ला के बहाने हमने काकोरी के क्रांतिकारियों के संघर्ष और उनके वैचारिक इतिहास को नए सिरे से जाँचने-परखने की चेष्टा की है । अशफ़ाक़उल्ला जैसे क्रांतिकारी आज हमें तेजी से याद आते हैं और इसलिए युवा पीढ़ी को यह बताना भी जरूरी है कि उनके सिद्धांत और आदर्श क्या थे और वे किस उद्देश्य के लिए बलिदान हो गए । यह भी कि उनके सपने कहाँ तक साकार हुए हैं और उनकी कल्पना के भारत को बनाने के लिए हमें क्या करना चाहिए ।

अशफ़ाक़उल्ला को जानना अपने देश की संस्कृति और इतिहास को जानना है; और जिसे जानकर ही हम आगे का रास्ता तय कर सकते हैं ।

अशफ़ाक़उल्ला और भगतसिंह का मार्ग ही देश की मुक्ति और प्रगति का मार्ग है ।

शाहजहाँपुर-242 001 (उ. प्र.) —सुधीर विद्यार्थी
19 दिसंबर, 1988
[काकोरी शहीद दिवस]

अशफ़ाक़उल्ला और उनका युग

भारत का स्वतंत्रता संग्राम सन् 1857 ई. में शुरू हो गया था। इस लड़ाई की शुरुआत फौज के एक सिपाही मंगल पाँडे के विद्रोह से हुई थी, इसलिए अनेक इतिहासकारों ने इसे 'सिपाही-विद्रोह' की संज्ञा दी। परंतु बाद के इतिहासकारों ने अपनी खोजों और विवरणों से यह सिद्ध कर दिया कि देश की गुलामी के विरुद्ध यह एक सुनियोजित जनक्रांति थी। यह क्रांति जितनी जबरदस्त थी, उतनी ही पाशविक शक्ति अंग्रेजों ने इसे कुचलने में लगा दी। हजारों लोगों को तलवार से कत्ल किया गया, कितने ही तोप के मुँह में बाँधकर उड़ा दिए गए और आजादी के अनगिनत दीवानों को फाँसी के तख्तों पर लटका दिया गया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद कितना भोला था कि जिसे यह यकीन था कि आदमी की हत्या करके वे उसके विचारों की भी हत्या कर देंगे। वे नहीं जानते थे कि अंधकार सूर्य को नष्ट नहीं कर सकता। सूर्य पूरी शक्ति के साथ उगता है हर रात के बाद। 1857 गुजर गया। ऊपर से एक बार तो लगा कि स्वतंत्रता की लड़ाई थम गई है, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। बीज बराबर मिट्टी के नीचे काम करता रहा और क्रांति के वे शोले ऊपर से भले ही उस रूप में न सही, कहीं न कहीं चमकते-दहकते अवश्य रहे। आदमी की यह जिजीविषा ही तो संघर्षों के इतिहास का निर्माण करती है…

61 वर्ष—यानी 1921 में महात्मा गाँधी के राजनैतिक गगन में आने से पहले स्वतंत्रता संग्राम के नाम पर जो कुछ हुआ, वह क्रांतिकारियों का

ही तो कत्लगाह था । तब हिंसा और अहिंसा का प्रश्न ही कहाँ था । किसी भी मुल्क में आजादी की लड़ाई को ऐसे प्रश्नों को खड़ा करके या ऐसे खानों में बाँटकर नहीं देखा गया, जैसा कि भारत में आगे चलकर हुआ या आज भी कुछ लोग उस स्वर्णिम युग का मूल्यांकन इसी तरह करने का असफल प्रयत्न करते रहते हैं ।

जो भी हो, 1921 में महात्मा गाँधी ने देश की स्वतंत्रता के लिए असहयोग आंदोलन चलाया । भारतीय राजनीति में तब वह एक नया प्रयोग था और इसीलिए भारत के क्रांतिकारियों ने भी इसे बहुत धैर्यपूर्वक देखा और उसमें सक्रिय हिस्सेदारी भी की । लेकिन देश के जन-जन तक फैला यह आंदोलन जब अपनी चरम सीमा पर पहुँचा तो उत्तर प्रदेश के गोरखपुर में चौरी-चौरा नामक स्थान पर हुई हिंसा के बहाने महात्मा जी ने आंदोलन को अकेले वापस ले लिया । गाँधी जी की यह बहुत बड़ी भूल थी । दरअसल इस आंदोलन में जनता की ओर से जो कुछ हुआ वह हिंसा नहीं थी, बल्कि अन्याय और अत्याचार से उत्पीड़ित लोग पहली बार उसका प्रतिकार करने के लिए उठ खड़े हुए और उन्होंने थाने को घेरकर उसमें आग लगा दी, जिसमें कई सिपाही भी जलकर मर गए । उस आंदोलन का चरित्र देखें तो पता लगता है कि जनता अपने को पूरी तरह क्रांति के लिए समर्पित कर चुकी थी, लेकिन महात्मा गाँधी ने हिंसा और अहिंसा का मुद्दा उठाकर आंदोलन की चलती गाड़ी को 'ब्रेक' लगा दिया । गाँधी जी के इस कदम से भारतीय क्रांतिकारी ही नहीं, उनके अनेक साथी और सहयोगी भी उनसे नाराज और निराश हो गए थे । कहना न होगा कि कांग्रेस अपने शुरुआती दौर में भी एक व्यक्ति के निर्णयों से संचालित हो रही थी ।

क्रांतिकारियों ने यह देखकर कि जनता तेजी से क्रांति की ओर अग्रसर हो रही है, जबकि नेता आंदोलन की डोर को पीछे की ओर खींच रहे हैं, अपने छोड़े हुए हथियार फिर से उठा लिए । उत्तर भारत के क्रांतिकारी शचींद्रनाथ सान्याल के नेतृत्व में क्रांति का ताना-बाना फिर से बुनने लगे । सान्याल जी रासबिहारी बोस के दाहिने हाथ समझे जाते थे । सन् 1915 में जब उनकी उम्र केवल बीस वर्ष की थी, तब उन्हें 'बनारस षड्यंत्र केस' में काला पानी की सजा देकर अंडमान भेज दिया

गया था। प्रथम महायुद्ध के बाद हुई आम माफी के सिलसिले में उन्हें 20 फरवरी, 1920 को रिहा किया गया, लेकिन वे पुनः क्रांतिकारी कार्यों में लग गए। देश के लिए कितना समर्पित जीवन था उनका।

असहयोग आंदोलन के पश्चात देश की राजनीति का सूत्र फिर क्रांतिकारियों के हाथ में आ गया था। अब वे देश-भर में व्यापक स्तर पर विप्लव की तैयारी में जुट गए थे। इसी योजना के अनुसार क्रांतिकारी केंद्रों की स्थापना के लिए बंगाल के 'अनुशीलन दल' की ओर से योगेशचंद्र चटर्जी को संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) भेजा गया। वे यहाँ आए तो उनके व्यक्तित्व को देखकर यहाँ के क्रांतिकारी नौजवान बहुत प्रभावित हुए। योगेश दा अपनी इसी विशेषता के कारण संयुक्त प्रांत में जल्दी ही क्रांतिकारी युवकों का एक संगठन तैयार करने में सफल हो गए। शचींद्रनाथ सान्याल इस क्षेत्र में यहाँ पहले से ही सक्रिय थे। सान्याल जी ने सोचा कि जब उनका और योगेश दा का उद्देश्य एक ही है तो दो अलग-अलग दल क्यों कार्य करें। उन्होंने योगेश दा से बातचीत की। योगेश दा ने इसमें कोई आपत्ति नहीं की, क्योंकि लक्ष्य तो उनका भी क्रांतिकारी उपायों द्वारा देश को स्वाधीन कराने का ही था। नेतृत्व की पहचान उसमें कहीं आड़े नहीं आ रही थी। पर योगेश दा स्वयं कोई निर्णय लेने में असमर्थ थे। वे 'अनुशीलन' जैसे अनुशासित क्रांतिकारी दल से जुड़े हुए थे, इसलिए उन्होंने बंगाल के अपने नेताओं से विचार-विमर्श किया और अनुमति मिलते ही संयुक्त प्रांत में सान्याल जी और योगेश दा के दल मिलकर कार्य करने लगे। उत्तर भारत के क्रांतिकारी आंदोलन की प्रगति के लिए यह एक शुभ संकेत था, जिसका सभी ने स्वागत किया।

अब दल के संगठन की मुख्य जिम्मेदारी योगेश दा पर आ पड़ी। पहले वे कानपुर जाकर पुराने क्रांतिकारी सुरेशचंद्र भट्टाचार्य से मिले। वहाँ के संगठन का कार्य वही देख रहे थे। रामदुलारे त्रिवेदी से यहीं भेंट हुई और वे उन्हें साथ लेकर शाहजहाँपुर में पंडित रामप्रसाद बिस्मिल से मिलने पहुँचे। बिस्मिल को 1918 के प्रसिद्ध 'मैनपुरी षड्यंत्र केस' की फरारी का विशिष्ट अनुभव था। इस केस में वे आम माफी के बाद सार्वजनिक रूप से सामने आए। यहाँ यह बता देना उपयुक्त होगा कि

बिस्मिल जी प्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता पं. गेंदालाल दीक्षित के नेतृत्व में कार्य कर चुके थे और उनसे बहुत प्रभावित थे। बिस्मिल ने आगे चलकर गेंदालाल जी का एक जीवन-वृत्त भी लिखा, जिसके आधार पर ही भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में उनके महत्त्व को रेखांकित किया गया। गेंदालाल जी बाद को शहीद हो गए, पर बिस्मिल जी जब उनकी यादों और आदर्शों का झंडा लेकर आगे बढ़े तो रास्ते में अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ से उनकी भेंट हो गई। यह भेंट अचानक नहीं हुई थी, बल्कि अशफ़ाक़ बहुत प्रयत्न करके उनसे मिले थे और उन्होंने 'मैनपुरी षड्यंत्र केस' के संबंध में उनसे विस्तार से जानना भी चाहा था। यद्यपि अशफ़ाक़उल्ला के बड़े भाई बिस्मिल जी के सहपाठी रह चुके थे, पर उस समय बिस्मिल जी ने अशफ़ाक़ की किसी बात को गंभीरता से नहीं लिया। उनके मन में एक बार यह विचार भी आया था कि स्कूल के एक मुसलमान विद्यार्थी का इन बातों में दिलचस्पी लेने का कारण क्या है। पर अशफ़ाक़ धुन के पक्के थे। उन्होंने कोशिश करके बिस्मिल को यह विश्वास दिला दिया कि उनके मन में भी मुल्क की खिदमत करने की वैसी ही ख्वाहिश है और वे क्रांति के रास्ते पर चलने के लिए हर तरह से तैयार हैं।

बिस्मिल अब पुन: क्रांतिकारी कार्यों में लगने के इच्छुक थे। उनके मिल जाने से योगेश दा को दल के काम के लिए एक भरोसेमंद आदमी ही नहीं, गजब का संगठनकर्त्ता भी मिल गया था। कहा जाता है कि उन दिनों के क्रांतिकारी युवक शचींद्रनाथ सान्याल को अधिक पसंद नहीं करते थे, पर योगेश दा पर उनका अटूट विश्वास था। ऐसा शायद सान्याल जी की बौद्धिकता और योगेश दा की भावुकता के कारण था। बिस्मिल जी भी योगेश दा के अधिक निकट थे।

अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ ने जब क्रांतिकारी जीवन में प्रवेश किया तो वे छात्र ही थे। पर देश के बारे में वे गंभीरता से सोचने लगे थे और अंग्रेजों के प्रति उनके मन में घृणा पैदा हो गई थी। उन्हें महसूस होने लगा था कि सारे रोग की जड़ विदेशी हुकूमत है और इसे मिटाना बहुत जरूरी है।

स्कूल के दिनों की ही एक घटना है, जब अशफ़ाक़उल्ला ने अचानक सुना कि दिल्ली में वायसराय पर किसी ने बम फेंक दिया। इसी सिलसिले में जब स्कूल बंद हुआ तो अशफ़ाक़ की खुशी की सीमा न थी। वे उस घटना के बारे में ज्यों-ज्यों गहराई से जानने का प्रयत्न करते, त्यों-त्यों वे किसी स्वप्नलोक में खो जाते और अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध तलवार से लैस एक क्रांतिकारी के रूप में अपनी कल्पना करने लगते।

तलवार का सपना अशफ़ाक़उल्ला के लिए नया नहीं था। बचपन में उन्हें मेले से अगर कोई चीज लाने का शौक था तो वह तलवार ही होती थी। एक बार अशफ़ाक़ ने अपने पिता से कहा—"मियाँ, आप मुझे एक तलवार मोल ला दें।"

उन्होंने जवाब दिया—"बेटा, तुमसे कोई छीन लेगा।"

अशफ़ाक़ ने कहा—"आप चाँदी की तलवार न लाएँ, बल्कि लोहे की ला दें। वह कोई न छीनेगा।"

माँ और पिता इस पर हँस पड़े। उन्हें क्या पता था कि उनका यही पुत्र आगे चलकर तलवार के बल पर ब्रिटिश हुकूमत को जबरदस्त चुनौती देगा।

अशफ़ाक़ प्रारंभ से ही पढ़ने-लिखने में तेज थे। अपनी पढ़ाई की 'रस्म' शुरू होने से पहले ही वे 'कायदे' की पुस्तक खत्म कर चुके थे। मौलवी ने उन्हें उसी पुराने तरीके से पढ़ाना शुरू किया, पर वे जल्दी ही उर्दू और फ़ारसी पढ़ना सीख गए। माँ के पास उर्दू की बहुत-सी किताबें थीं और अशफ़ाक़ ने वे सब पढ़ डालीं। इनमें किस्से-कहानियों की किताबें ज्यादा थीं। लड़ाई की कहानियाँ पढ़ने में उन्हें बहुत आनंद आता और वे घंटों उन्हीं कल्पनाओं में डूबे रहते।

लड़ाई के किस्से पढ़ते-पढ़ते अशफ़ाक़ लड़ाकू स्वभाव के हो गए। मौलवी जब उनसे बहुत परेशान होते तो वे उन्हें कान पकड़कर उठाते-बैठाते। लेकिन इस पर भी अशफ़ाक़ की शरारतें कम नहीं हुईं तो मौलवी उन पर सख्त निगरानी रखने लगे। अब वे मौलवी के साथ ही दोपहर को जाते और शाम को मगरिब के वक्त तक उनके साथ रहते।

बाहर लड़कों के खेलने की आवाज सुनकर अशफ़ाक़ मन मसोसकर रह जाते। अशफ़ाक़ के कोमल चेहरे पर उस समय जो भाव आता, वह मौलवी से छिपा न रहता। पर शैतानी करने पर अशफ़ाक़ को कड़ी सज़ा मिलती और मौलवी मानो अपनी विजय पर गर्व महसूस करते।

मौलवी की इन सज़ाओं ने अशफ़ाक़ के शरीर को बचपन से ही मजबूत बना दिया। मौलवी योग्य थे और उनके पढ़ाने का तरीका भी निराला था। गणित के वे विशेष जानकार थे, पर अशफ़ाक़ पर उनकी शिक्षा का सबसे बड़ा प्रभाव यह पड़ा कि वे छोटी आयु से ही अंग्रेजियत के कट्टर विरोधी बन गए। अशफ़ाक़ के ही शब्दों में—''वह सबक़ कम देते थे, मगर अंग्रेजी की तालीम का ख़ाक़ा बहुत उड़ाते थे और अंग्रेजी की दोस्ती को जहन्नुम जाने का ज़रिया समझते थे। अंग्रेजी पोशाक से सख़्त नफ़रत थी और ऐसे-ऐसे क़िस्से गढ़-गढ़कर सुनाया करते थे कि जिनका महज़ नतीजा यह निकला कि हम लोग आज तक कोट-पतलून पहनते हुए झिझकते हैं। गो कि अब अक्सर इस वक्त के दोस्तों के साथ बैठकर हँसते हैं मगर अब पता चलता है कि जब प्यारे महात्मा गाँधी ने भी वही तालीम दी कि देशी वज़ा रखो और विदेशी कपड़ा पहनो। प्यारे मौलवी साहब की बातें याद आईं। एंटी ब्रिटिश स्प्रिट (अंग्रेज विरोधी भावना) उनमें ज़्यादा थी··· शायद वह आज ज़िंदा होते तो ख़ुश होते। मैं उनकी मर्ज़ी के मुताबिक़ उनको मिलता, क्योंकि विदेशी ख्यालात मुझमें कुछ नहीं और अंग्रेजों के खिलाफ स्प्रिट भी है।''

अपने बचपन की मानसिकता का खुलकर जिक्र करते हुए अशफ़ाक़उल्ला कहते हैं—''मेरी माँ की तालीमी हालत अच्छी-ख़ासी थी और निहायत अक्लमंद थीं। उन्होंने हम लोगों को ऐसी तरबियत दी कि आज हम जवान होने पर भी चारों भाई उनसे इतना डरते हैं कि उनके ख़िलाफ़ हुक्म कुछ भी नहीं कर सकते।···मेरी वालिदा जो बाक़ायदा तालीम हासिल किए हुए थीं, बराबर अख़बार की मुस्तक़िल खरीदार बन गईं और मैं भी बराबर अख़बार पढ़ने लगा। तब मैंने जाना कि मुसलमान और भी कहीं हैं, क्योंकि उस वक़्त तक जुगराफिया से नावाक़िफ़ था और महज़ हिंदुस्तान को ही मुकम्मल दुनिया ख़्याल करता था। जैसे मेंढक कुएँ को तसव्वुर (ख़याल) करता है। चूँकि मैं पठान था

और यह कौम आमतौर पर सेंटीमेंटल (जाहिल) ख़याल की जाती है। ... इन ख़यालात में डूब गया और रोज़ोशब (रात-दिन) इसी दुआ में रहता था कि तुर्क हिंदुस्तान फ़तह कर लें और यहाँ बादशाह बन जाएँ तो हम ख़लीफ़ये वक़्त की रियाया बन जाएँ। ... अंग्रेज से नफ़रत पैदा हो गई। मेरा तो यही ख़याल था कि यही बानिये-फ़साद (झगड़े की जड़) हैं और इनकी हुकूमत ही नेस्त व नाबूद होना चाहिए। और इस तरह हो कि अफ़गानिस्तानी या तुर्क लोग हमला कर दें और हम लोग इनसे बग़ावत कर दें। फिर इनकी सल्तनत दरहम-बरहम (तितर-बितर) हो जाएगी और हम बजाए ईसाइयों के मुसलमानों की रियाया हो जाएँगे। ईसाई सल्तनत ख़राब व ख़स्ता हो जाएगी ... गरज़ कि मेरा उस वक़्त का ख़्याल आज मुझे बहुत ज़लील मालूम होता है कि हम एक का हलक़येगुलामी उतारकर दूसरे की गुलामी का जुआ अपने कंधों पर रखने में मुसर्रत-सी महसूस करते थे। ख़ैर, वह मेरी नासमझी का ज़माना था। हाँ, मेरा ख़याल उस ज़माने में या उसके बाद हिंदुओं के ख़िलाफ़ बहुत था और बाद को बहुत हो गया था। चूँकि हमारे करमफरमा एक मास्टर साहब थे जिनका अगर मैं नाम लिखूँगा तो उन्हें मुफ़्त में शर्मिंदग़ी हासिल होगी और वह मेरे मास्टर थे। जब मैं गवर्नमेंट स्कूल में पढ़ता था वह हमेशा हिंदू-मुस्लिम में बहुत इम्तियाज़ (फ़र्क) करते थे। जो मैं अब कहूँगा कि उस्ताद का कमीनापन था और यही लोग मुल्क के असल में दुश्मन हैं। मगर आज मेरा दिल ऐसा ही कुशादा (खुला हुआ) एक हिंदू के लिए भी है जैसा एक मुसलमान के लिए। ख़ैर, उस वक़्त के लीडर अब भी इत्तिहादे इस्लामी पर आमिल हैं। गो कि एक हद तक मैं भी उनसे इत्तिफ़ाक़ करता हूँ कि भाई समझने में कोई नुकसान नहीं। मदद करना हमारा फर्ज़ है क्योंकि हम फैयाज़ मुल्क के फयाज़ बाशिंदे हैं। मगर किसी की हुकूमत अपने ऊपर क़ुबूल करना हमारी पस्तहिम्मती और बदबख़्ती है। यह किसी तरह हमारे शायानेशान नहीं। दुनिया में इन्कलाब व तगय्युरात (तब्दीलियाँ) कितनी तेज़ी से हुआ करते हैं। कल मैं क्या था और आज मैं क्या हूँ। कल मैं तुर्की की हुकूमत अपने ऊपर बायसेसद नाज़ो इफ़तिख़ार (गर्व) और जरियए बख़्शिश (मोक्ष का साधन) समझता था और आज बदतरीन जिल्लत। आज तो मैं हर

विदेशी हुकूमत को बुरा समझता हूँ और साथ ही साथ हिंदुस्तान की ऐसी जम्हूरी सल्तनत को भी जिसमें कमजोरों का हक़ हक़ न समझा जाए, या हुकूमत के सरमायादारों और ज़मींदारों के दिमागों का नतीजा हो, या जिसमें मसावी (बराबर) हिस्सा मजदूरों और काश्तकारों का न हो, या बाहम इम्तियाज़ व तफ़रीक़ (अंतर) रखकर हुकूमत के क़वानीन बनाए जाएँ।''

अशफ़ाक़ ने अपने शुरुआती दौर के विचारों पर कई बार खेद प्रकट किया और वे उन लोगों को कभी माफ़ नहीं कर सके जो उनकी इस मानसिकता के निर्माण में सहायक रहे। उन्होंने लिखा है–''अच्छा मैं इत्तिहादे इस्लामी पैन इस्लामिस्ट तक एक ज़माने तक रहा। मगर यह ज़माना वह था जब मुझे ज़िंदगी का शऊर (अक्ल) हासिल नहीं हुआ था। यह ज़माना उस ज़माने के करीब का है, जब बंगाल को कन्हाईलाल दत्त ने अपनी क़ुर्बानी से हिला दिया था और ख़ुदीराम बोस ने, जिससे तमाम हिंदुस्तान काँप उठा था। कभी-कभी कहानियाँ सुनने में आती थीं और बंगाली बमों का हाल सुनते थे तो दिल में ख़्वाहिश पैदा होती थी कि हम भी ऐसे होते।''

अशफ़ाक़ के विचारों का यही परिवर्तन और बंगाल से लेकर उत्तर भारत की जमीन पर क्रांतिकारी आंदोलन की गतिविधियाँ उन्हें विप्लवी पथ पर ले आईं। बात उस समय की है, जब 1918 में वे शाहजहाँपुर के मिशन स्कूल में सातवें दर्जे में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। 'मैनपुरी षड्यंत्र केस' उसी समय चला था और उस सिलसिले में दसवें दर्जे में पढ़ रहे राजाराम भारतीय की विद्यालय से हुई गिरफ्तारी का अशफ़ाक़उल्ला के मस्तिष्क पर गहरा असर पड़ा। उस दिन स्कूल में चारों ओर पुलिस की लाल पगड़ियाँ ही दिखाई दे रही थीं और एक सरकारी गवाह ने राजाराम भारतीय को पुलिस के हवाले करा दिया। उत्तर भारत के क्रांतिकारियों का यह पहला षड्यंत्र था जिस पर बंगाली क्रांतिकारियों का कोई प्रभाव नहीं था। राजाराम भारतीय की तरह किसी युवक क्रांतिकारी की गिरफ्तारी तब कोई साधारण बात न थी। अशफ़ाक़ उस दिन ज़रा देर से विद्यालय गए थे पर गिरफ्तारी के समय वे चुपचाप अपनी कक्षा में बैठे रहे। लेकिन भीतर एक हलचल थी जो उन्हें शांत नहीं बैठने दे रही थी।

अशफ़ाक़ ने अपने अध्यापक से इस संबंध में जानना चाहा, पर वे बताने से डरे। एक लड़के ने धीरे से कहा—"राजाराम ने कहीं डाका मारा है और वह गिरफ्तार किए गए हैं। और भी लड़के गिरफ्तार हुए हैं।"

अशफ़ाक़ को अब उत्सुकता हुई कि यह राजाराम कौन है। राजाराम को एक सीधे-सादे और खामोश विद्यार्थी के रूप में जाना जाता था और छात्र उनसे अधिक परिचित न थे। अशफ़ाक़ की मुलाकात राजाराम जी से उनकी रिहाई के बाद हुई। पर उस दिन अशफ़ाक़ को विश्वास नहीं हुआ कि राजाराम भी क्रांतिकारी हो सकते हैं। शाहजहाँपुर में उस दिन कई तलाशियाँ हुईं और अशफ़ाक़ के लिए यह बहुत रोमांचकारी था। तभी एक साथी ने धीरे से अशफ़ाक़ को बताया—"राजाराम एक खुफिया सोसाइटी का मेंबर है, न डाकू है न क़ातिल।"

अशफ़ाक़ ने हँसकर कहा—"तुम भी मालूम होते हो। तुम्हें भी ग़िरफ़्नार करा दूँगा।"

सहपाठी ने बहादुरी से उत्तर दिया—"मैं देश के लिए मरने को तैयार हूँ।" इतना छोटा वाक्य उसने कुछ इस तरह कहा कि अशफ़ाक़ उसे जीवन-भर भूले नहीं।

अशफ़ाक़ को उसी समय खबर लगी कि रामप्रसाद बिस्मिल की भी इस मुकदमे में पुलिस को तलाश थी, पर वे फरार हो गए थे।

उन दिनों अशफ़ाक़ सोचा करते थे कि टोपीदार बंदूक या कुछ गोलों से बरतानिया हुकूमत को थोड़े-से युवक कैसे हटा सकते हैं। कई बार उन्हें यह भी लगता कि नौजवानों का गरम खून है, पर वे उनकी जिंदादिली के सामने नतमस्तक हो जाते। सोचते कि अगर यही नौजवान किसी आजाद मुल्क में पैदा हुए होते तो राष्ट्र-निर्माण में उनका कितना बड़ा योगदान होता। जो जवानियाँ आज देश की खातिर मिटने को तैयार हैं, वे कितने बड़े देशभक्त और बलिदानी हैं। ये इस धरती के सबसे बड़े आदमी हैं…

अशफ़ाक़उल्ला तगड़े नौजवान थे और खूबसूरत भी। वे ऊँचे कद के थे और उनका व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था। उनका जन्म 22 अक्टूबर, सन् 1900 ई. को मुहम्मद शफ़ीक़उल्ला ख़ाँ के परिवार में

हुआ था। उन्हें बचपन से ही कसरत करने और तैरने का शौक था। वे जल्दी ही अच्छे खिलाड़ी बन गए। निशाना भी उनका बहुत अच्छा था। पर अशफ़ाक़ जब बड़े हुए तो बचपन के उनके शौक धीरे-धीरे छूटते गए। अब वे ज्यादा समय देश के बारे में सोचा करते। मैनपुरी षड्यंत्र के मुकदमे के बाद उनकी मानसिक स्थिति बहुत बदल गई। आठवाँ दर्जा पास होकर आए तो उन्होंने कोर्स की किताबों में सर वाल्टर स्कॉट की लिखी हुई नज़्म 'लव ऑफ कंट्री' (देशभक्ति) पढ़ी। होरेशस का किस्सा भी पढा जिसमें उसने कहा था कि देश पर शत्रु के आक्रमण के समय यदि पल तोड़ दिया जाए तो टाईबर नदी को पार करके फौज नहीं आ सकती ··· मैं जाता हूँ और इस तंग रास्ते में मैं तीन साथियों सहित खड़े होकर लड़ूँगा और इधर पुल तोड़कर नदी में डाल दिया जाए। वैसा ही किया गया और रोम बच गया।

देशभक्ति का यह किस्सा और वाल्टर स्कॉट की नज़्म अशफ़ाक़ को उनके अध्यापक ने कुछ इस तरह सुनाई कि अशफ़ाक़ अपने को रोक न सके और उस दिन खूब रोए।

अशफ़ाक़ के सामने अब देशभक्ति बहुत बड़ी चीज थी। वे सोचते—कैसे होते हैं वे लोग जो देश की खातिर फाँसी के तख्ते पर हँसते-हँसते अपने प्राण न्योछावर कर देते हैं। कई बार वे उन लोगों के बीच अपने को खड़ा पाते और गर्व महसूस करते। वे मन-ही-मन सोचते—मैं भी क्रांतिकारी बनूँगा—देश की आजादी के लिए मर-मिटनेवाला सच्चा क्रांतिकारी···

अशफ़ाक़ के अध्यापक ने एक बार उन्हें एक पुस्तक पढ़ने को दी, जिसमें संसार-भर के प्रसिद्ध देशभक्तों की वीरतापूर्ण कहानियाँ थीं। पुस्तक देते समय अध्यापक ने उनसे कहा था—"मैं यह किताब तुमको बिलकुल देता हूँ, क्योंकि तुम इसके योग्य हो।"

अशफ़ाक़ ने इस पर गर्व महसूस किया।

देशभक्ति के उन किस्सों को अशफ़ाक़ ने पढ़ा तो उनके इरादों में और भी मजबूती आ गई। फिर तो उन्हें किताबें पढ़ने का शौक लग गया। हिंदी कम जानते थे तो 'आनंद मठ' एक साथी से पढ़वाकर सुना। इस साथी ने ही उन्हें गुप्त क्रांतिकारी दल के बारे में कुछ संकेत दिए।

अशफ़ाक़ के मन में एकाएक विचार आया कि वे देश से बाहर जाकर देश का कार्य करें। पर मित्र ने उन्हें यहीं रहकर काम करने और क्रांतिकारी दल में सम्मिलित होने की सलाह दी। बात उनके मन को भा गई और वे इस प्रयास में लग गए कि किसी तरह क्रांतिकारी दल के लोगों से मुलाकात हो।

एक दिन अशफ़ाक़ ने अपने मित्र से कहा कि वे किसी तरह उनका परिचय रामप्रसाद बिस्मिल से करा दें। अशफ़ाक़ के मन की उस समय की बेचैनी उन्हीं के शब्दों में देखिए—"मैंने ख़याल किया कि रामप्रसाद से मिलो, शायद वहाँ दवा मिल जाए। और कोई तस्क़ीन कल्ब (मन को शांति देनेवाली) सूरत निकल आए।"

शहर में उन्हीं दिनों खन्नौत नदी के किनारे एक सभा हुई। बिस्मिल ने उसमें भाषण देते हुए एक शेर पढ़ा—

बहे बहरे-फ़ना में जल्द या रब लाश बिस्मिल की,
कि भूख़ी मछलियाँ हैं जौहरे-शमशीर क़ातिल की।

रामप्रसाद बिस्मिल से परिचय और मुलाकात तो हो गई, पर वे जिस उदासीनता से अशफ़ाक़ से मिले, उसे लेकर अशफ़ाक़ और भी चिंतित हो उठे। लेकिन अशफ़ाक़ ने हिम्मत नहीं हारी और वे बिस्मिल को यह विश्वास दिलाने के प्रयत्न में लग गए कि देश को स्वतंत्र कराने के लिए वे कदम से कदम मिलाकर चलने को तैयार हैं। बिस्मिल ने अशफ़ाक़उल्ला से हुई इसी मुलाकात और बाद में उनके क्रांतिकारी दल से जुड़ने की घटना का बहुत मार्मिक वर्णन किया है—"मुझे भली-भाँति याद है, जबकि मैं बादशाही एलान के बाद शाहजहाँपुर आया था, तो तुमसे स्कूल में भेंट हुई थी। तुम्हारी मुझसे मिलने की बड़ी हार्दिक इच्छा थी। तुमने मुझसे मैनपुरी षड्यंत्र के संबंध में कुछ बातचीत करनी चाही थी। मैंने यह समझकर कि एक स्कूल का मुसलमान विद्यार्थी मुझसे इस प्रकार की बातचीत क्यों करता है, तुम्हारी बातों का उत्तर उपेक्षा की दृष्टि से दे दिया था। तुम्हें उस समय बड़ा खेद हुआ था। तुम्हारे मुख से हार्दिक भावों का प्रकाश हो रहा था। तुमने अपने इरादों को यों ही नहीं छोड़ दिया, अप े निश्चय पर डटे रहे। जिस प्रकार हो सका कांग्रेस में

बातचीत की। अपने इष्ट-मित्रों द्वारा इस बात का विश्वास दिलाने की कोशिश की कि तुम बनावटी आदमी नहीं, तुम्हारे दिल में मुल्क की खिदमत करने की ख्वाहिश थी। अंत में विजय तुम्हारी हुई। तुम्हारी कोशिशों ने मेरे दिल में जगह पैदा कर दी। तुम्हारे बड़े भाई मेरे उर्दू मिडिल में सहपाठी तथा मित्र थे, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। थोड़े दिनों में ही तुम मेरे छोटे भाई के समान हो गए थे, किंतु छोटे भाई बनकर तुम्हें संतोष न हुआ। तुम समानता का अधिकार चाहते थे, तुम मित्र की श्रेणी में अपनी गणना चाहते थे। वही हुआ। तुम सच्चे मित्र बन गए। सबको आश्चर्य हुआ था कि एक कट्टर आर्यसमाजी और मुसलमान का मेल कैसा। मैं मुसलमानों की शुद्धि करता था। आर्यसमाज मंदिर में मेरा निवास था, किंतु तुम इन बातों की किंचित मात्र चिंता न करते थे। मेरे कुछ साथी तुम्हें मुसलमान होने के कारण घृणा की दृष्टि से देखते थे, किंतु तुम अपने निश्चय में दृढ़ थे। मेरे पास आर्यसमाज मंदिर में आते-जाते थे। हिंदू-मुस्लिम झगड़ा होने पर, तुम्हारे मुहल्ले के सब कोई तुम्हें खुल्लमखुल्ला गालियाँ देते थे, काफिर के नाम से पुकारते थे, पर तुम कभी उनके विचारों से सहमत नहीं हुए। सदैव हिंदू-मुस्लिम ऐक्य के पक्षपाती रहे। तुम एक सच्चे मुसलमान और सच्चे स्वदेशभक्त थे। तुम्हें यदि जीवन में कोई विचार था, तो यही कि मुसलमानों को खुदा अक्ल देता कि वे हिंदुओं के साथ मिलकर के हिंदुस्तान की भलाई करते। जब मैं हिंदी में कोई लेख या पुस्तक लिखता तो तुम सदैव यही अनुरोध करते कि उर्दू में क्यों नहीं लिखते, जो मुसलमान भी पढ़ सकें। तुमने स्वदेश-भक्ति के भावों को भली-भाँति समझने के लिए ही हिंदी का अच्छा अध्ययन किया। अपने घर पर जब माता जी तथा भ्राता जी से बातचीत करते थे, तो तुम्हारे मुँह से हिंदी शब्द निकल जाते थे, जिससे सबको बड़ा आश्चर्य होता था।

"तुम्हारी इस प्रकार की प्रवृत्ति को देखकर बहुतों को संदेह होता था कि कहीं इस्लाम धर्म त्यागकर शुद्धि न करा लो। पर तुम्हारा हृदय तो किसी प्रकार अशुद्ध न था, फिर तुम शुद्धि किस वस्तु की कराते। तुम्हारी इस प्रकार की प्रगति ने मेरे हृदय पर परिपूर्ण विजय पा ली। बहुधा मित्र मंडली में बात छिड़ती कि कहीं मुसलमान पर विश्वास

करके धोखा न खाना। तुम्हारी जीत हुई, मुझमें-तुममें कोई भेद न था। बहुधा मैंने-तुमने एक थाली में भोजन किया। मेरे हृदय से यह विचार ही जाता रहा कि हिंदू-मुसलमान में कोई भेद है। तुम मुझ पर अटल विश्वास तथा अगाध प्रीति रखते थे। हाँ, तुम मेरा नाम लेकर पुकार नहीं सकते थे। तुम तो सदैव 'राम' कहा करते थे। एक समय जब तुम्हे हृदय-कंप का दौरा हुआ, तुम अचेत थे, तुम्हारे मुँह से बारंबार 'राम', 'हाय राम' शब्द निकल रहे थे। पास खड़े हुए भाई-बांधवों को आश्चर्य था कि 'राम-राम' कहता है। कहते कि 'अल्लाह-अल्लाह' कहो, पर तुम्हारी 'राम-राम' की रट थी। उसी समय किसी मित्र का आगमन हुआ, जो 'राम' के भेद को जानते थे। तुरंत मैं बुलाया गया। मुझसे मिलने पर तुम्हें शांति हुई, तब सब लोग 'राम-राम' के भेद को समझे।

"अंत में इस प्रेम, प्रीति तथा मित्रता का परिणाम क्या हुआ। मेरे विचारों के रंग में तुम भी रँग गए। तुम भी कट्टर क्रांतिकारी बन गए। अब तो तुम्हारा दिन-रात यही प्रयत्न था कि जिस प्रकार हो, मुसलमान नवयुवकों में भी क्रांतिकारी भावों का प्रवेश हो। वे भी क्रांतिकारी आंदोलन में योग दें। जितने तुम्हारे बंधु तथा मित्र थे, सब पर तुमने अपने विचारों का प्रभाव डालने का प्रयत्न किया। बहुधा क्रांतिकारी सदस्यों को भी बड़ा आश्चर्य होता कि मैंने कैसे एक मुसलमान को क्रांतिकारी दल का प्रतिष्ठित सदस्य बना लिया। मेरे साथ तुमने जो कार्य किए, वे सराहनीय हैं। तुमने कभी भी मेरी आज्ञा की अवहेलना नहीं की। एक आज्ञाकारी भक्त के समान मेरी आज्ञा पालन में तत्पर रहते थे। तुम्हारा हृदय बड़ा विशाल था। तुम्हारे भाव बड़े उच्च थे।"

'मैनपुरी षड्यंत्र केस' की आममाफी के बाद बिस्मिल जी जब शाहजहाँपुर आए, तो उस समय की स्थिति बड़ी विचित्र थी। कोई उनसे बात करना भी पसंद नहीं करता था। जैसे-तैसे कुछ समय व्यतीत हुआ, तो बिस्मिल ने अपनी लिखी 'कैथराइन' और 'स्वदेशी रंग' पुस्तकें प्रकाशित कराईं। 'क्रांतिकारी जीवन' भी उसी समय लिखी, पर उसे

छापने को कोई तैयार नहीं हुआ। बिस्मिल अब 'राम' और 'अज्ञात' नाम से भी पत्र-पत्रिकाओं में लिखने लगे थे। इसी समय उन्होंने अरविंद घोष की बंगला पुस्तक 'यौगिक साधना' का हिंदी अनुवाद भी किया। 'बोलशेविक करतूत' और 'मन की लहर' की बची-खुची प्रतियाँ बहुत कम मूल्य पर वे इस समय बेचने को मजबूर हुए थे।

असहयोग आंदोलन के पश्चात देश की राजनीति का सूत्र पूरी तरह क्रांतिकारियों के हाथ में आ गया था। शचींद्रनाथ सान्याल और योगेशचंद्र चटर्जी के दल जब एक हो गए तो उसका नाम 'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' रखा गया और सान्याल जी ने उसका एक संविधान तैयार किया जो पतले और पीले कागज पर छपाए जाने के कारण 'पीला कागज' कहा गया। यहाँ यह बात बता देना उचित होगा कि इस संविधान का अंतिम ध्येय संसार की स्वतंत्र जातियों के संघ का निर्माण करना था। किंतु इसका तात्कालिक उद्देश्य सशस्त्र क्रांति द्वारा भारत को आजादी दिलाने का था। इस संविधान की विशेषता यह थी कि इसमें किसानों और मजदूरों को संगठित करने की बात कही गई थी, जो क्रांतिकारियों की प्रगतिशीलता और उनके लक्ष्य की ओर स्पष्ट संकेत है।

क्रांतिकारी दल का कार्य तेजी से चलाने के लिए बिस्मिल एंक बार फिर आगे आए। उन्होंने आगरा, मेरठ, इटावा, मैनपुरी, बरेली, हरदोई, कानपुर, इलाहाबाद आदि शहरों का दौरा किया। योगेश दा ने इसमें बहुत मदद की। बिस्मिल के पुराने क्रांतिकारी मित्र और अनेक नए लोग आकर दल से जुड़ गए। जब संगठन का काम ठीक से चलने लगा तो शचींद्रनाथ सान्याल ने 'द रिवोल्यूशनरी' शीर्षक से एक पर्चा छपवाया, जिसे 28 से 31 जनवरी, 1925 के बीच बंबई, लाहौर, अमृतसर, कलकत्ता, रंगून और संयुक्त प्रांत के प्रमुख नगरों में वितरित किया गया। सरकार आश्चर्यचकित थी कि ऐसा कौन-सा सुसंगठित दल है जिसने एक ही दिन में संपूर्ण देश में इन पर्चों का वितरण किया। पर्चे के प्रचार-प्रसार का सारा कार्य बिस्मिल के जिम्मे था, पर सरकार बहुत प्रयत्न करने के बाद भी यह पता लगाने में असफल रही कि पर्चे को छपवाने और वितरित करवानेवाला कौन है। पर्चे में लिखा था—

''\'द रिवोल्यूशनरी'—'द रिवाल्यूशनरी पार्टी ऑफ इंडिया' का एक संगठन।

''उथल-पुथल में से ही नया सितारा उगता है। पीड़ा तथा कष्ट में से ही नए जीवन का जन्म होता है। भारत का भी नया जन्म हो रहा है और वह उसी अवश्यम्भावी काल से गुजर रहा है जब उथल-पुथल और पीड़ा की भी अपनी निश्चित भूमिका रहेगी, जब सारी गणनाएँ गलत साबित हो जाएँगी, चालाक और शक्तिशाली लोग सीधे-सादे और कमजोर लोगों के सामने अचंभित हो जाएँगे, जब महान साम्राज्य ढह जाएगा और उसकी जगह नए राष्ट्रों का उदय होगा जो अपने निजी वैभव और तेज से मानव मात्र को चकित कर देंगे··· नौजवान भारतवासियो, अपने भ्रम को उतार फेंको और साहस के साथ असलियत का सामना करो। संघर्षों, कठिनाइयों और त्याग से हिचको मत। अब और अधिक बहकावे में मत आओ। अमन-चैन तुम्हें मिल नहीं सकता और शांतिपूर्ण तथा कानूनी तरीके से भारत को आजादी मिलने से रही··· विदेशियों को भारत पर शासन करने का कोई अधिकार नहीं है। अतः उनकी सत्ता अस्वीकार की जानी चाहिए और उन्हें भारत से खदेड़ देना चाहिए··· भारत के क्रांतिकारी न तो आतंकवादी हैं और न अराजकतावादी। उनका उद्देश्य मातृभूमि पर अराजकता फैलाना नहीं है। अतः उन्हें किसी भी तरह अराजकतावादी नहीं कहा जा सकता। आतंक उनका उद्देश्य नहीं है, उन्हें कभी आतंकवादी नहीं कहा जा सकता। यद्यपि वे इस समय आतंक का प्रयोग विरोध के अत्यंत प्रभावशाली साधन के रूप में कर रहे हैं, लेकिन उनका आतंक सिर्फ आतंक के लिए नहीं है और न ही वे यह मानते हैं कि आजादी सिर्फ आतंक से मिल सकती है··· क्रांतिकारी इसे कभी नहीं भूलेंगे कि किसी भी राष्ट्र का निर्माण उन हजारों अनचीन्हे देशवासियों के बलिदान से होता है, जो अपने सुख, स्वार्थ, जीवन और अपने प्रियजनों के जीवन से

अधिक अपने राष्ट्र के हित की परवाह करते हैं।

—विजय कुमार
अध्यक्ष
केंद्रीय समिति,
हिंदुस्तान रिपब्लिकन पार्टी"

छद्म नाम से छापे गए इस पर्चे से पूरे देश में खलबली मच गई। सरकार और देश का ध्यान एक बार फिर क्रांतिकारियों की ओर जाने लगा। पुलिस और जनता के बीच इस बात की पुष्टि हो गई कि क्रांतिकारी संगठन पुनर्जीवित हो गया है और उसकी शाखाएँ दूर-दूर तक फैल चुकी हैं। इस पर्चे में यह स्पष्ट किया गया था कि क्रांतिकारियों का आतंकवाद पर ही भरोसा हो, ऐसी बात नहीं है। पर यदि उन्हें मजबूर किया गया तो आतंकवादी कार्यों का ऐसा भयंकर तांता बाँध दिया जाएगा, जिसमें प्रत्येक अंग्रेज और साथ-ही-साथ उसके भारतीय पिछलग्गुओं का जीवन असंभव कर दिया जाएगा।

यहाँ यह बता दें कि इसके बाद ही शचींद्र बाबू के हस्ताक्षर से बंगाल से एक अन्य पर्चा 'देशवासिर प्रति निवेदन' भी छपा। यद्यपि इस पर्चे से क्रांतिकारियों की विचारधारा के प्रति कोई नई बात सामने नहीं आती, पर यह तो साफ है कि भारतीय विप्लवी उन दिनों वैचारिक संघर्ष के दौर से गुजर रहे थे। असहयोग आंदोलनकारी अपने-अपने घरों को लौट चुके थे और सत्याग्रह एक बीती हुई घटना बन चुका था। उन दिनों सर्वाधिक बहसें हिंसा और अहिंसा के प्रश्नों को लेकर हो रही थीं और लोग वैकल्पिक रास्ते की तलाश में क्रांतिकारी उपायों की ओर नजर डालने लगे थे। ऐसे समय में शचींद्र बाबू ने स्वतंत्रता-प्राप्ति के अहिंसक तरीकों पर जोरदार प्रहार किया और गाँधी जी को एक खुला पत्र भी लिखा। यह पत्र बहुत लंबा था और वैचारिक रूप से संपन्न एक क्रांतिकारी चिंतक द्वारा लिखा होने के कारण बहुत रोमांचकारी और विद्वतापूर्ण भी था। गाँधी जी के उत्तर के साथ शचींद्र बाबू का वह पत्र 'यंग इंडिया' में छपा तो राजनैतिक क्षेत्रों में हलचल मच गई। गाँधी जी के उत्तर को पढ़कर क्रांतिकारियों की ओर से पुनः एक पत्र भेजा गया

और वह भी यथासमय उनके उत्तर के साथ 'यंग इंडिया' में प्रकाशित हुआ। यह वैचारिक बहस कई बार चली, पर क्रांतिकारी दल के अनेक सदस्य इस पत्र-व्यवहार की वास्तविक स्थिति से सर्वथा अपरिचित थे। वे यह नहीं जानते थे कि गाँधी जी को बाद में लिखे गए पत्र शचींद्र बाबू ने नहीं, मन्मथनाथ गुप्त ने लिखे हैं। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने 'क्रांतिकारी के संस्मरण' पुस्तक में इस पत्र-व्यवहार का पूरा ब्योरा दिया है। उल्लेखनीय है कि यह पुस्तक शचींद्र नाथ सान्याल जी के जीवन-काल में ही प्रकाशित हो गई थी।

इन पत्रों और पर्चों के साथ क्रांतिकारियों के उस समय के विचारों को जाँचने-परखने के लिए हमें उनके द्वारा अध्ययन की जा रही पुस्तकों पर भी एक दृष्टि डालनी होगी। गहराई से जानने के लिए हम यहाँ मन्मथनाथ गुप्त का कथन उद्धृत कर रहे हैं—''हम लोग पार्टी में लोगों की भर्ती के लिए किस प्रकार के साहित्य का उपयोग करते थे, इन मामलों में शचींद्र बाबू बहुत ही अप-टू-डेट थे। समाजवादी दलों के बहुत पहले ही उन्होंने पुस्तकों और विषयों की एक सूची प्रकाशित कर दी थी, जिसके अनुसार क्रांतिकारियों को अध्ययन करना चाहिए। इस सूची में गैरीबाल्डी, मैजिनी, डि वेलरा संबंधी बहुत-सी पुस्तकों का नाम था। कुछ रूस के संबंध में भी साहित्य था किंतु मुझे स्मरण नहीं कि वह क्या साहित्य था। मुझे स्मरण है कि मैंने पार्टी के प्रचार कार्य के लिए हिंदी में भी रूस पर कई पुस्तकें खरीदी थीं। एक पुस्तक 'रूस की राज्यक्रांति' थी। यह पुस्तक जब्त नहीं थी। किंतु जिस समय मैं बाद को चलकर गिरफ्तार हुआ, उस समय पुलिस यह पुस्तक तलाशी में उठा ले गई। उन दिनों हमने कीरक्रप लिखित 'हिस्ट्री ऑफ सोशलिज़्म' पढ़ी थी। मैं समझता हूँ, उन दिनों भारत में मिलनेवाली यह एकमात्र पुस्तक थी, जिसमें समाजवाद का इतिहास वर्णित था। कहाँ तक हमने इस पुस्तक को समझा था, यह मैं नहीं बता सकता। इतना तो खैर स्पष्ट है कि हमने वर्ग संघर्ष को बिलकुल समझा नहीं था और हम समाजवाद को धनी और गरीब के बीच लड़ाई के रूप में समझते थे। इसी प्रकार रूसी क्रांति के इतिहास को पढ़ते हुए हम बोलशेविकों और नार्डनिकों में कोई फर्क नहीं देखते थे। ज़ार की हत्या के प्रयत्न, सर्वहारा वर्ग द्वारा की गई

हड़तालें, लेनिन और ट्राटस्की की कार्यवाहियाँ—ये सब हमें एक साथ पिरोई हुई चीजों के रूप में ज्ञात होती थीं। हम डि वेलरा, डानब्रिन, गैरीबाल्डी, मैजिनी, कमालपाशा, सनयात सेन तथा लेनिन में कोई प्रभेद नहीं देख पाते थे। हमारे लिए ये सब वीर तथा देशभक्त थे। हमारे निकट लेनिन अन्य अनेक देशभक्तों की तरह एक देशभक्त थे। उन दिनों हम वर्गों के संबंध में कुछ नहीं समझते थे, इसलिए हम लेनिन और डि वेलरा में फर्क करते तो क्या करते। हमने मार्क्स का भी नाम एक स्पष्ट और दूर के व्यक्ति के रूप में सुन रखा था, किंतु मैं बहुत दिनों तक यह समझ नहीं पाया कि इस व्यक्ति को इन वीरों के साथ स्थान कैसे दिया जा सकता है। उन दिनों वे हमें एक कुरूप हृदय वृद्ध भद्र व्यक्ति के रूप में ज्ञात होते थे, जो सर्वहारा वर्ग के कष्टों को देखकर उनकी ओर परोपकारी दृष्टि से झुक गए थे। उनकी लंबी दाढ़ी तथा उनकी आँखें हमें सम्मान करने के लिए विवश करती थीं, किंतु यह सम्मान उस सम्मान से भिन्न नहीं था, जो हममें रवींद्रनाथ के प्रति उत्पन्न होता था।

"इन साहित्यों के साथ-साथ हम खुदीराम, यतींद्र मुकर्जी, कन्हाईलाल आदि की जीवनियाँ भी पढ़ते थे। ये सारी पुस्तकें जब्त थीं, इसलिए इन पुस्तकों को पढ़ने के साथ एक बहुत ही मोहक आकर्षण संयुक्त हो जाता था। जहाँ तक इन पुस्तकों के साहित्यिक मूल्य की बात है, मैं समझता हूँ कि उन पुस्तकों का मूल्य बहुत कम था। फिर भी इन पुस्तकों में जो तथ्य संग्रहीत थे, उनका अपना ही एक आवेदन होता था। इस संबंध में श्री मोतीलाल राय लिखित 'कन्हाईलाल' पुस्तक अपवादस्वरूप थी। इस पुस्तक का साहित्यिक मूल्य बहुत ही अधिक था। जो भी इस पुस्तक को पढ़ता था, वह बिना रोए, बिना अश्रु बहाए रह नहीं सकता था। अलीपुर षड्यंत्र में कन्हाईलाल एक अभियुक्त थे। उन्होंने जेल में एक रिवाल्वर मँगा लिया और अपने मुकदमे के मुखबिर नरेंद्र गोस्वामी को मार डाला। बाद को इन्हें फाँसी की सजा दी गई। इन फाँसियों की कहानी से हम घबराते नहीं थे, बल्कि हम लोगों में यह इच्छा होती थी कि हम इनके कृत्यों का अनुसरण करें। दुर्भाग्य से यह सारा साहित्य बंगला में था और हम उन्हें प्रचार कार्य के लिए हिंदी जाननेवाले युवकों में इस्तेमाल नहीं कर सकते थे। इन पुस्तकों और 'बंदी जीवन' के

अतिरिक्त बंगला में कुछ छुटे हुए क्रांतिकारियों की आत्मकथाएँ भी प्राप्त थीं और उन्हें पढ़कर हम जेल जीवन के विषयों में कुछ-कुछ जान रहे थे और यह भी समझ रहे थे कि इन सख्तियों के लिए तैयार रहना चाहिए। हाँ, इस संबंध में हम यह बताना भूल गए कि इस युग में डाँगे द्वारा बंबई से प्रकाशित 'सोशलिस्ट' नामक अखबार की कुछ प्रतियाँ हमें मिल जाती थीं। इसी युग में सत्यभक्त नाम के एक व्यक्ति ने भारतवर्ष में समाजवादी (कम्युनिस्ट) दल की स्थापना की चेष्टा की। इस पार्टी की सदस्य संख्या कोई 80 तक पहुँच गई थी। किंतु हमें नहीं मालूम कि क्यों यह पार्टी एकाएक खत्म हो गई। यह पार्टी कमोबेश एक परोपकारी सभा के रूप में थी।

"थोड़े में यह वह वातावरण था, जिसमें हम सन् 1923 से लेकर 1925 तक अर्थात हमारी गिरफ्तारी के समय तक परिपालित हुए, और ये वे विचार थे जिनसे हमने रस ग्रहण किया। पहले ही मैं बता चुका हूँ कि हम उस युग में समाजवादी नहीं थे, साथ ही समाजवाद की ओर रुख भी बहुत स्पष्ट था। क्रांति के संबंध में हमारी धारणा ब्लांकीवादी थी। किस प्रकार की सरकार स्थापित होगी, इस संबंध में हमारी धारणा राष्ट्रीय लोकतांत्रिक थी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को व़ोट का अधिकार रहेगा। हम जिस सरकार का स्वप्न देखते थे, वह स्वशासित राष्ट्रों का एक संघ होनेवाला था। संघ-प्रजातंत्र की बात हमारे दल के विधान में उल्लिखित थी। हम स्वदेशी और विदेशी वस्तुओं, विशेषकर विदेशी वस्त्र के बायकाट में विश्वास रखते थे। हमारे रोजमर्रा के जीवन में उन दिनों हमारा झुकाव तपस्या की ओर था। विलासिता से हम कोसों दूर भागते थे। मैं यह नहीं जानता कि इस संबंध में मनोवैज्ञानिक क्या कहेंगे, किंतु हम राष्ट्र के शासक तथा नेता बनने के बजाए फाँसीघर का ही स्वप्न देखा करते थे।"

क्रांतिकारियों की उस समय की वैचारिक स्थिति और तत्कालीन वातावरण को जानने के लिए यह उद्धरण प्रकाश-स्तंभ की तरह है। हम कह सकते हैं कि भारतीय क्रांतिकारियों का लक्ष्य अभी समाजवाद नहीं बना था, पर वे इस रास्ते पर चलने की प्रक्रिया में थे। यह निश्चय ही उनके वैचारिक विकास का एक चरण था। जहाँ 1857 से लेकर

चाफेकर-युग (1895) तक क्रांतिकारी देश को गुलामी में मुक्ति दिलाने के लिए संघर्ष कर रहे थे पर स्वतंत्र भारत की तस्वीर उनके सामने स्पष्ट नहीं थी, वहीं काकोरी की घटना (1925) के पूर्व क्रांतिकारियों ने अपना लक्ष्य स्पष्ट कर लिया था और वे एक ऐसे प्रजातंत्र की स्थापना की कल्पना करने लगे थे जहाँ सभी प्रकार के शोषण का अंत होगा और मनुष्य सच्चे अर्थों में आजादी का उपभोग कर सकेगा। आगे चलकर भगतसिंह के युग में क्रांतिकारियों ने 'समाजवाद' को अपना लक्ष्य घोषित कर दिया और उसी के लिए मरे-खपे। समाजवादी समाज की परिकल्पना बहुत स्पष्ट रूप में उन्होंने देश के सामने रखी।

इसी तरह काकोरी से पूर्व क्रांतिकारियों के धर्म संबंधी विचार अभी भगतसिंह-युग की तरह स्पष्ट नहीं हुए थे। भगतसिंह और उनके साथियों ने आगे चलकर धर्म और ईश्वर से वास्ता रखने से साफ इनकार कर दिया था, पर काकोरी युग को जानने के लिए हम मन्मथनाथ गुप्त का निम्न कथन उद्धृत करते हैं—''दल के नेता पंडित रामप्रसाद बिस्मिल कट्टर आर्यसमाजी थे और वे रोज हवन करते थे। बाद को जब उन्हें घनिष्ठ रूप से जानने का मौका मिला, उस समय हमने देखा कि वे उतने कट्टर नहीं हैं, जितने दिखाई पड़ते थे। जिस समय काम की जरूरत होती थी, उस समय वे कई-कई दिन तक हवन नहीं करते थे, और इसके लिए किसी ने कभी उनको कोई शिकायत करते नहीं सुना। उनका सारा व्यवहार और सोचने का तरीका फिर भी धार्मिक पुनरुद्धार का था। हम उन दिनों सभी धार्मिक पुनरुद्धार के समर्थक थे। केवल यही नहीं, हिंदू धर्म का पुनरुद्धार चाहते थे। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि जब बाद को बहुत से समाजवादी दल बने तो उनमें भी न केवल सदस्य के रूप में बल्कि महत्त्वपूर्ण नेताओं में बहुत से खुले ईश्वरवादी और धार्मिक पुनरुद्धार के समर्थक थे, और हैं। जबकि मार्क्सवाद में ऐसी बातों के लिए कोई भी गुंजाइश नहीं है, फिर भी समाजवादी दलों में ऐसे लोग हैं तो हमारे एच. आर. ए. में जो खुल्लमखुल्ला पुनरुज्जीवनवादी था, ऐसे विचारों का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

''अवश्य हम लोगों में सभी पंडित रामप्रसाद की तरह खुले धार्मिक पुनरुद्धार के समर्थक नहीं थे, किंतु हमारी तरह जो लोग ऊपर से धार्मिक

पुनरुद्धार के विरोधी थे, वे भी अंतिम विश्लेषण में पुनरुद्धार के अतिरिक्त कुछ नहीं थे। यद्यपि हमारे क्षेत्र में पुनरुद्धार का रंग स्पष्ट रूप से हिंदू नहीं था, बल्कि यह एक तरह के यूटोपिया या स्वप्नवाद में विलीन हो जाता था। पंडित रामप्रसाद के पनुरुद्धार के संबंध में यहाँ हमें एक घटना याद आती है, जिसको मैं केवल उसके हास्योद्रेक के लिए नहीं लिख रहा हूँ, बल्कि इससे उन दिनों महत्त्वपूर्ण क्रांतिकारियों में किस प्रकार की लहरें चल रही थीं, यह ज्ञात होता था। यह बाद की बात है कि जब हम हवालात में थे। जैसा कि हम बता चुके हैं, शचींद्र दा खुल्लमखुल्ला हिंदू पुनरुद्धार के समर्थक थे। वे बहुत ही स्पष्ट शब्दों में हमसे यह कहा करते थे कि क्रांतिकारी पार्टी का अंतिम ध्येय व्यावहारिक जीवन में वेदांत दर्शन के आदर्श को मूर्त करना है। यह कोई बहुत मूर्खतापूर्ण बात नहीं है, क्योंकि रवींद्रनाथ, विवेकानंद, अरविंद, राधाकृष्ण, भगवानदास सभी घुमाव-फिराव के साथ इसी बात को कहते हैं। वे न केवल ऐसा कहकर पढ़े-लिखे हिंदू वर्ग में बहुत विराट श्रोतावर्ग प्राप्त करते हैं, बल्कि पश्चिम के ह्रासशील बुर्जुआ लोगों में भी उनकी कदर अच्छी है। राजेंद्र लाहिड़ी और मैं इन शब्दों में पार्टी के उद्देश्य के वर्णन किए जाने के बिलकुल विरोधी थे। इस समय तक मैं धर्म के कुसंस्कार के विरुद्ध फैसला कर चुका था, किंतु ईश्वर संबंधी कुसंस्कार अभी बहुत दिनों तक टिकनेवाला था।

"इस बात के छिड़ते ही हवालात में बहुत जबरदस्त तर्क छिड़ गया। शचींद्र दादा ने हम लोगों का यह कहकर मजाक उड़ाया कि हम नए विचारों का प्रतिपादन कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि क्रांतिकारी आंदोलन के प्रारंभ से भारतीय क्रांतिकारी लोग गीता, महाभारत, विवेकानंद और अरविंद से अनुप्राणित होते रहे हैं, और यह कहना मूर्खता है कि क्रांतिकारियों के साथ धर्म का कोई संबंध नहीं है। उन्होंने कहा कि वेदांत के उदात्त आदर्शों के बगैर उनके निकट जीवन का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। मैंने उनसे पूछा कि मुसलमानों का क्या होगा? क्या वे उनके इस आदर्श को स्वीकार करेंगे? उन्होंने कहा कि यद्यपि वेदांत को जन्म हिंदुओं ने दिया है, किंतु इसमें ऐसी बात नहीं है जिससे यह सांप्रदायिक रूप से हिंदू-विचारधारा कही जा सके। पंडित रामप्रसाद ने

शचींद्र दादा का समर्थन किया। सच बात तो यह है कि सभी प्रमुख क्रांतिकारी उनकी राय के थे। उस समय मैं उन्हें यह नहीं बता सका कि सब धर्मों की 'ट्रेजिडी' यह है कि वे समझते हैं कि उनके विशेष धर्म की अंतर्गत वस्तु चिरंतन और सार्वदेशिक है। उस समय मैं इन शब्दों में अपने विचारों को रख नहीं सकता था, किंतु फिर भी मैंने जो कहा, वह और भी चुभता हुआ सिद्ध हुआ, और व्यावहारिक दृष्टि से यह साबित हो गया कि शचींद्र दादा के मत को लेकर चला नहीं जा सकता। मैंने उनसे कहा कि यदि यह मान भी लिया जाय कि वेदांत का आदर्श सार्वदेशिक है, तो भी यह बताना रह ही जाता है कि वेदांत की कौन-सी व्याख्या सही समझी जाए, जबकि बहुत ही आधारभूत प्रश्नों पर भी विभिन्न व्याख्याओं में विभिन्न ध्येय बताए गए हैं। उदाहरणार्थ मैंने एक शरारत भरे तरीके से आँख मारकर यह पूछा कि क्या पंडित रामप्रसाद और शचींद्र दादा वेदों और वेदांत के अर्थ के संबंध में एकमत होंगे। मेरा मतलब यह था कि आर्यसमाजियों ने तो वेदों की बिलकुल दूसरी ही व्याख्या की है। थोड़ी देर के लिए शचींद्र दादा की उत्साह भरी आँखें बुझ-सी गईं। सचमुच यह एक भारी समस्या थी, किंतु दूसरे ही क्षण वे सँभल गए और कहने लगे कि सब वैदिक विद्वानों ने दयानंद जी की व्याख्या को मनगढ़ंत बताकर अस्वीकार कर दिया है। इस पर रामप्रसाद फौरन स्वामी दयानंद का पक्ष-समर्थन करने के लिए आगे बढ़े, और अब हमें आनंद प्रदान करते हुए इन दो महान पुनरुज्जीवनवादियों में तर्क छिड़ गया। इस तर्क का वांछित फल हुआ। इसके बाद से शचींद्र दादा इन शब्दों में अपने मत को नहीं रखते थे। अवश्य वे हमेशा मन में निश्चित रहे कि वे ही सही रास्ते पर हैं, किंतु फिर भी उनमें और पंडित जी में जो तर्क हो गया, उसके कारण अब इस प्रकार बातें करना असंभव हो गया। इसका नतीजा यह हुआ कि खुल्लमखुल्ला यही कहा जाने लगा कि एक राजनैतिक दल का उद्देश्य राजनैतिक ही होना चाहिए, और उसे धर्म में दम नहीं भरना चाहिए।...

"हमारी पार्टी के नेतागण धार्मिक रूप से जरूर सोचते थे, किंतु उनका धर्म इतना दार्शनिक था कि उसके साथ किसी प्रकार कट्टर आचरण का संबंध नहीं था। उदाहरणार्थ धर्म के परम प्रतिपादक होते

हुए भी शचींद्र दादा और पंडित रामप्रसाद ने हम लोगों से कभी यह नहीं कहा कि तुम लोग गोमांस क्यों खाते हो। वे ऐसी बातों के प्रति पूर्ण रूप से उदासीन थे। अवश्य इन सज्जनों में इस प्रश्न पर भी मतभेद था। पंडित जी विशुद्ध निरामिषभोजी थे। वे सब तरह के मांस-भक्षण को बुरी निगाह से देखते थे। वे एक ही साँस में तमाम तर्कों को दे सकते थे, जो मांस-भक्षण के विरोध में दिए जाते हैं—उदाहरणार्थ मनुष्य के दाँत ऐसे बने हुए हैं कि उनकी बनावट से ही मालूम होता है कि मनुष्य मांसाहारी प्राणी नहीं है, इत्यादि। शचींद्र बाबू की बात दूसरी थी। वे मांसाहारी थे (अवश्य उनको कई बार मांस छोड़ने की झक सवार होती थी और यह झक कई बार वर्षों तक स्थायी रही), किंतु वे गाय और सुअर के प्रति पूर्ण रूप से उदासीन थे। उनका धर्म इतना आकाशचारी था कि इन ब्यौरों में पड़ना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझते थे। शचींद्र दादा के प्रति न्याय करने के लिए यह भी बता देना जरूरी है कि यद्यपि वे कट्टर वेदांती थे, किंतु फिर भी वे जो कुछ करते थे, वह दृश्यमान रूप से हिंदुओं के प्रति पक्षपातपूर्ण नहीं था। किंतु ऊपरी बातें ही सब कुछ नहीं हैं, वे अक्सर धोखा भी दे जाती हैं। सार्वदेशिक रंगामेजी के बावजूद उनके सोचने के सब तरीके हिंदू थे। इसके अतिरिक्त वे उन भारतीय अंध देशभक्तों में थे, जो यह सोचकर अपने को धोखा देते हैं कि भारत का विशेष मिशन यह है कि वह दुनिया को अध्यात्मवाद का पाठ पढ़ावे।"

रामप्रसाद बिस्मिल की सक्रियता से उनका शहर शाहजहाँपुर उन दिनों क्रांतिकारी गतिविधियों का प्रमुख केंद्र बन गया था। यहाँ आए दिन दल के सदस्यों की गुप्त बैठकें होतीं। बिस्मिल, अशफ़ाक़उल्ला, योगेशचंद्र चटर्जी, शचींद्रनाथ बख्शी, राजेंद्रनाथ लाहिड़ी, विष्णुशरण दुबलिश, रामदुलारे त्रिवेदी, राजकुमार सिन्हा, केशव चक्रवर्ती, दामोदर स्वरूप सेठ, गोविंदचरण कार, रामनाथ पांडे, बनवारीलाल आदि यहाँ आते और मिलकर नई-नई योजनाएँ बनाते।

लोगों को आश्चर्य हो रहा था बिस्मिल और अशफ़ाक़ की दोस्ती पर। एक कट्टर आर्यसमाजी और दूसरा पक्का मुसलमान। बात न

हिंदुओं [illegible] और मुसलमानों के । पर दोनों पर चढ़ा दोस्ती का रंग गहरा ही होता गया । वे साथ-साथ खाना खाते और आर्यसमाज मंदिर में रहते । कोई उपदेशक या भजनीक आता तो बिस्मिल के साथ अशफ़ाक़ भी उसकी सेवा में जुट जाते । अशफ़ाक़ के मुहल्ले का हर कोई उन्हें बुरा-भला कहता, पर अशफ़ाक़ थे कि उन पर इन बातों का कोई असर नहीं पड़ता । एक बार शाहजहाँपुर में हिंदू-मुस्लिम दंगा हुआ । मुसलमानों का एक जुलूस जब आर्यसमाज मंदिर पर पहुँचा तो अशफ़ाक़ तमन्चा तानकर खड़े हो गए—"खबरदार, जो किसी ने आगे बढ़ने की हिम्मत की ।" जुलूस में आए लोग अशफ़ाक़ को देखकर पीछे लौट गए ।

अभी दल का काम कुछ ही दिन चला था कि एकाएक धन की जरूरत आ पड़ी । संगठन की आर्थिक दशा बहुत खराब थी । बिस्मिल लिखते हैं—"सब पर कुछ न कुछ कर्ज़ हो गया था । किसी के पास साबुत कपड़े तक न थे । कुछ विद्यार्थी बनकर धर्मक्षेत्रों तक में भोजन कर आते थे । चार-पाँच ने अपने-अपने केंद्र त्याग दिए । पाँच सौ से अधिक रुपए मैं कर्ज लेकर व्यय कर चुका था । यह दुर्दशा देख मुझे बहुत कष्ट होने लगा । मुझसे भी भरपेट भोजन न किया जाता था । सहायता के लिए कुछ सहानुभूति रखनेवालों का द्वार खटखटाया, किंतु कोरा उत्तर मिला । मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ था । कुछ समझ में न आता था । कोमल-हृदय नवयुवक मेरे चारों ओर बैठकर कहा करते—'पंडित जी, अब क्या करें ।' मैं उनके सूखे-सूखे मुख को देखकर बहुधा रो पड़ता कि स्वदेश सेवा का व्रत लेने के कारण फकीरों से भी बुरी दशा हो रही है । एक-एक कुर्ता तथा धोती भी ऐसी नहीं थी जो साबुत होती । लँगोटा बाँधकर दिन व्यतीत करते थे । अँगोछे पहनकर नहाते थे । एक समय क्षेत्र में भोजन करते थे । एक समय दो-दो पैसे के सत्तू खाते थे । मैं पंद्रह वर्ष से एक समय दूध पीता था । इन लोगों की यह दशा देखकर मुझे दूध पीने का साहस न होता था । मैं भी सबके साथ बैठकर सत्तू खा लेता था । मैंने विचार किया कि इतने नवयुवकों के जीवन को नष्ट करके उन्हें कहाँ भेजा जाए । जब समिति का सदस्य बनाया था तो लोगों ने बड़ी-बड़ी आशाएँ बँधाई थीं । कइयों का पढ़ना-लिखना छुड़ाकर काम में लगा

दिया था। पहले से मुझे यह हालत मालूम होती तो मैं कदाचित इस प्रकार की समिति में योग न देता। बुरा फँसा। क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता था। अंत में धैर्य धारण कर दृढ़तापूर्वक कार्य करने का निश्चय किया।"

बिस्मिल ने दल की स्थिति और भविष्य की योजनाओं पर विचार करने के लिए केंद्रीय समिति की बैठक बुलाने का निश्चय किया क्योंकि जर्मनी से माउजर पिस्तौलों की खरीद करनी थी और बड़ी संख्या में बम बनाए जाने थे। बिस्मिल की योजना यह भी थी कि विभिन्न जिलों में पुस्तकालय, क्लब और सेवा समितियाँ खोली जाएँ ताकि दल का आधार निर्मित हो सके। वे एक साप्ताहिक पत्र भी निकालने की योजना बना रहे थे ताकि देशवासियों के बीच वैचारिक क्रांति का वातावरण तैयार किया जा सके। इसके लिए बिस्मिल चाहते थे कि निजी प्रेस हो, ताकि प्रचार कार्य में कोई अड़चन न आए। पर सब कार्यों के लिए बहुत बड़ी पूँजी की आवश्यकता थी और हालत यह थी कि दल के सदस्यों को अपना निर्वाह करना भी मुश्किल होता जा रहा था। चंद्रशेखर आजाद को इन्हीं दिनों दल का काम करते हुए अक्सर भूखे रहना पड़ता था। रवींद्र मोहन कार के बारे में तो मैंने यहाँ तक सुना कि वे सत्तू खाकर गुजारा करते हुए पूरी लगन से देश के काम में जुटे रहते थे। योगेश दा स्वयं अपना खाना बनाते तथा बर्तन माँजते थे। शचींद्रनाथ बख़्शी और मुकुंदीलाल ने भी बहुत कष्टों में रहकर उस समय दल का काम किया। कुंदनलाल गुप्त को कितना त्यागपूर्ण जीवन जीना पड़ा, इसके लिए इतना बता देना ही पर्याप्त होगा कि दल ने प्रतापगढ़ में संगठन को मजबूत बनाने के उद्देश्य से बनारस से उनकी नौकरी छुड़वा दी और दल की ओर से दस रुपए मासिक पर उन्हें किसी तरह गुजर-बसर करनी पड़ी।

यद्यपि क्रांतिकारियों का यही प्रयत्न रहता था कि उनके दल के सदस्य किसी तरह अपनी आजीविका स्वयं चलाएँ, पर पूरे समय काम करनेवाले कुछ सदस्यों के भोजन आदि की जिम्मेदारी पार्टी की होती थी। यह सच है कि बनारस के बाबू शिवप्रसाद गुप्त जैसे शुभचिंतक समय-समय पर दल को आर्थिक सहयोग भी देते थे। पर वह दल के व्यय के लिए पर्याप्त नहीं होता था। आर्थिक संकट के दिनों में दल के

सदस्य धन की ज़रूरत को पूरा करने के लिए धनी और देशद्रोही व्यक्तियों के घरों पर डकैती डालते थे। क्रांतिकारी दलों के लिए इस तरह धन जुटाना कोई नई बात नहीं थी। बिस्मिल स्वयं कई ऐसे प्रयोग कर चुके थे। आयरलैंड के क्रांतिकारी भी पार्टी चलाने के लिए इन्हीं तरीकों का इस्तेमाल करते थे। लेनिन की बोलशेविक पार्टी ने भी रूस में इसी तरह डकैतियाँ डालकर दल का काम चलाया था। कहा ज़ाता है कि स्टालिन स्वयं बाकू के पास किसी डकैती में सम्मिलित हुए थे।

अशफ़ाक़उल्ला ने रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में 9 मार्च, 1925 को पीलीभीत जिले के बिचपुरी गाँव में हुई प्रसिद्ध डकैती में हिस्सा लिया था। इस 'ऐक्शन' में चंद्रशेखर आजाद, मन्मथनाथ गुप्त, शचींद्रनाथ बख्शी, बनारसीलाल आदि भी सम्मिलित हुए थे। मन्मथ जी के अनुसार इस डकैती में बिस्मिल ने कुछ पेशेवर डकैतों का भी सहयोग लिया था। उन्होंने ऐसा सावधानी के तौर पर किया था क्योंकि दल के अधिकांश सदस्य नए थे जो संभव है कि खतरे के समय किसी तरह की चोट खा जाएँ। पर इस डकैती में कोई बड़ी रकम हाथ नहीं लगी। चाँदी और सोने के कुछ गहने मिले, जिन्हें बनारसीलाल ने गलवाकर पाँच सौ रुपए में बिकवाया। इससे बिस्मिल को निराशा मिली। पेशेवर डकैतों का प्रयोग भी सफल नहीं रहा क्योंकि लूट के समय वे किसी पर अत्याचार करने या जान से मारने में हिचकते नहीं थे। बिस्मिल का मन इस भारी बोझ से दब गया कि देशवासियों को इस तरह सताना उचित नहीं है। ऐसी डकैतियाँ खतरा उठाकर भी न तो दल को आर्थिक रूप से सुदृढ़ करती हैं और न ही दल की प्रतिष्ठा को बढ़ाती हैं। बिस्मिल अब इन डकैतियों से ऊब चुके थे और वे दूसरे साधनों व तरीकों पर गंभीरता से सोच रहे थे, ताकि जनता के बीच क्रांतिकारियों के कार्यों पर कोई उँगली न उठाई जा सके।

केंद्रीय समिति में काफी विचार-विमर्श के बाद जब यह तय हो गया कि क्रांतिकारी अब सिर्फ सरकारी संपत्ति या बैंक का धन ही लूटेंगे, तो बिस्मिल इस योजना का खाका तैयार करने लगे। एक दिन 8 डाउन यात्री गाड़ी से लखनऊ जाने पर उनकी दृष्टि रेल से जा रहे टिकटों की बिक्री की रकम पर पड़ी। वे सोचने लगे कि क्यों न इस सरकारी संपत्ति

की लूट राजनैतिक तरीके से की जाए ताकि दल का राजनैतिक चरित्र भी स्पष्ट हो सके।

दल के सदस्यों को बिस्मिल की यह योजना बहुत पसंद आई। उनके चेहरे इस बात से प्रसन्न थे कि वे अब सरकार को सीधी चुनौती देने में सफल होंगे। लेकिन बिस्मिल के इस विचार का विरोध अकेले उनके मित्र अशफ़ाक़उल्ला ने किया। उनका कहना था कि हमारा दल अभी मजबूत नहीं है। उसमें वह शक्ति नहीं है कि वह सरकार से सीधा युद्ध कर सके। इसलिए पहले पार्टी का आधार मजबूत किया जाए और उसे विकसित किया जाए। अशफ़ाक़ ने सचेत करते हुए कहा कि सरकार को इस तरह की चुनौती देने से हमारा दल बिखर जाएगा और यह हमारे तथा देश के किसी भी तरह हित में नहीं होगा।

अशफ़ाक़उल्ला इस डकैती के विरुद्ध थे, पर रेल का खजाना लूटने की योजना दल में बहुमत से तय हो गई। पहले यह निर्णय हुआ कि किसी छोटे स्टेशन पर जब गाड़ी खड़ी हो, उसी समय हमला किया जाए। पर इसमें जोखिम ज्यादा था और कई व्यक्तियों के मारे जाने की भी संभावना थी। बिस्मिल नहीं चाहते थे कि कोई खून-खराबा हो। नरहत्या के वे घोर विरोधी थे। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि वे जान-बूझकर किसी गोरे या भारतीय को मारने का प्रयत्न नहीं करेंगे। अतः यह तय किया गया कि किसी निश्चित स्थान पर दो स्टेशनों के मध्य जंजीर खींचकर गाड़ी खड़ी कर दी जाए और खजाने का संदूक निकालकर उस पर कब्जा कर लिया जाए।

सरकारी खजाने की लूट के पक्ष में न होते हुए भी जब दल ने बहुमत से इस 'एक्शन' का फैसला ले लिया तो अशफ़ाक़ एक अनुशासित सिपाही की भाँति इस अभियान में चल पड़े। यही उनके चरित्र की ऊँचाई थी। वे दल और उसके नेता का कोई भी निर्णय मानने को हर समय तैयार रहते थे और उसके लिए बड़े से बड़ा बलिदान देने में गर्व महसूस करते थे।

9 अगस्त, 1925 की रात्रि। आसमान बादलों से घिरा हुआ था और हल्की बूँदा-बाँदी हो चुकी थी। हथियारों और छेनी-हथौड़ों से लैस वे

दस क्रांतिकारी नौजवान शाहजहाँपुर से छूटी आठ डाउन पैसेंजर गाड़ी में शाहजहाँपुर स्टेशन से चढ़ गए । आज उन्हें अपने लक्ष्य की ओर जाना था । वे सर पर कफ़न बाँधकर एक शक्तिशाली साम्राज्य को चुनौती देने निकल पड़े थे । गिनती में सिर्फ दस थे वे, पर उनके इरादे ऊँचे और मजबूत थे । वे देश की आजादी के लिए क्रांति के इस रास्ते पर सीना तानकर चले थे, इसलिए आज उन्हें अपने अभियान पर नाज़ था ...

युवकों की टोली में थे अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ, मन्मथनाथ गुप्त, चंद्रशेखर आज़ाद, राजेंद्रनाथ लाहिड़ी, केशव चक्रवर्ती, मुरारीलाल, मुकुंदीलाल और शचींद्रनाथ बख्शी । नेतृत्व कर रहे थे देल के नेता पं. रामप्रसाद बिस्मिल । सभी क्रांतिकारी अलग-अलग रेल के डिब्बों में चढ़े थे और उनकी जिम्मेदारियाँ निर्धारित कर दी गई थीं । अशफ़ाक़उल्ला, शचींद्रनाथ बख्शी और राजेंद्रनाथ लाहिड़ी द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में सवार हुए थे । उनका काम था कि वे निश्चित स्थान पर जंजीर खींचकर गाड़ी खड़ी करेंगे । इस टुकड़ी का नेतृत्व अशफ़ाक़ कर रहे थे ।

गाड़ी ज्यों ही लखनऊ के निकट काकोरी और आलमनगर स्टेशन के बीच पहुँची, द्वितीय श्रेणी में बैठे युवकों ने जंजीर खींचकर उसे खड़ा कर दिया । बिजली की गति से वे सभी युवक डिब्बे से बाहर कूद पड़े और गाड़ी को चारों ओर से घेर लिया । पिस्तौलों से फायर करके मुसाफिरों को सावधान कर दिया गया कि कोई डिब्बों से उतरे या झाँके नहीं । गार्ड के डिब्बे से खजाने का संदूक धक्का देकर उतार लिया गया और गार्ड को पिस्तौल दिखाकर नीचे जमीन पर लेटने की आज्ञा दे दी गई । गार्ड महोदय तुरंत औंधे मुँह जमीन पर लेट गए । सभी के पास अपनी-अपनी माउजर पिस्तौलें थीं, जिनकी मार बहुत दूर तक होती थी । दो आदमियों को नियुक्त कर दिया गया था कि वे लाइन की पगडंडी को छोड़कर घास में खड़े होकर गाड़ी से हटते हुए गोली चलाते रहें । ठीक उसी समय एक मुसाफिर, जो एक डिब्बे से दूसरे डिब्बे की ओर उतर कर जा रहा था, दल के किसी सदस्य की गोली का निशाना बन गया । यद्यपि क्रांतिकारी किसी मुसाफिर को मारकर डकैती को भीषण रूप देना नहीं चाहते थे, पर चेतावनी के बावजूद रेल से उतरने

पर उसे गोली लग गई ।

अब समस्या यह थी कि खजाने का संदूक कैसे खोला जाए । गार्ड या अन्य किसी के पास उसकी चाबी नहीं रहती थी । संदूक की बनावट कुछ इस तरह की होती थी कि प्रत्येक स्टेशन पर उसमें पैसों का थैला डाला तो जा सकता था, पर कोई उसमें से कुछ निकाल नहीं सकता था । ऐसी स्थिति में लोहे के संदूक को छेनी से काटने का प्रयास किया गया । पर उससे काम बना नहीं । अशफ़ाक़ पहरा देनेवाले चार आदमियों में से एक थे । उन्होंने देखा तो पिस्तौल मन्मथनाथ गुप्त को देकर वे संदूक पर कुल्हाड़े से प्रहार करने लगे और उनकी बलिष्ठ भुजाओं ने कुछ ही क्षणों में संदूक का मुँह खोल दिया । क्रांतिकारियों ने द्रुत गति से संदूक में से रुपयों के थैले निकालकर एक चादर में बाँध लिए । ठीक उसी समय लखनऊ की तरफ से आती हुई कोई मेल गाड़ी दूसरी पटरी पर दिखाई दी । क्रांतिकारी और अधिक चौकन्ने और सावधान हो गए । वे सोच रहे थे कि अँधेरे सुनसान में इस गाड़ी को खड़ा देखकर कहीं मेल रुक न जाए और यदि उसमें से कुछ हथियारबंद लोग उतर पड़े तो मुठभेड़ जैसी स्थिति ही पैदा हो जाएगी । पर मेल गाड़ी तेजी से गुजर गई और क्रांतिकारी जल्दी ही रुपया हथियाकर वहीं कहीं घने जंगलों में गायब हो गए ।

योजना की प्रशंसा में फूल बरसाने होंगे कि रेल-डकैती का यह काम सिर्फ दस मिनट में पूरा हो गया और इतनी बड़ी गाड़ी को दस व्यक्ति लूटने में कामयाब हो गए, जबकि उस गाड़ी में चौदह मनुष्य ऐसे थे जिनके पास बंदूकें या रायफलें थीं । गाड़ी में दो अंग्रेज फौजी जवान भी थे, पर सब शांत रहे । ड्राइवर तथा एक इंजीनियर महाशय का बुरा हाल था । वे दोनों अंग्रेज थे । ड्राइवर महोदय इंजन में लेटे रहे और इंजीनियर महाशय पाखाने में जा छिपे । क्रांतिकारियों ने कह दिया कि मुसाफिरों से न बोलेंगे, सरकार का माल लूटेंगे । इस कारण मुसाफिर भी शांतिपूर्वक बैठे रहे । यात्री समझे कि तीस-चालीस आदमियों ने गाड़ी को घेर लिया है, पर केवल दस युवकों ने ऐसा आतंक फैला दिया था । साधारणतः इस बात पर बहुत से लोग विश्वास करने में भी संकोच करेंगे कि दस नवयुवकों ने गाड़ी खड़ी करके लूट ली । जो भी हो, बात

वास्तव में यही थी । इन दस कार्यकर्त्ताओं में अधिकतर तो ऐसे थे जो आयु में 22 के आसपास के होंगे और जो शरीर से बहुत बलशाली भी नहीं थे ।

लूट के बाद दल के नेता ने कई बार कहा कि देख लो कोई सामान रह तो नहीं गया । इस पर भी एक महाशय चादर डाल आए । रास्ते में थैलियों से रुपया निकालकर गठरी बाँधी और उसी समय लखनऊ शहर जा पहुँचे । बिस्मिल कहते हैं कि उस समय किसी ने पूछा भी नहीं कि कौन हो, कहाँ से आए हो ।

इस सफलता को देखकर बिस्मिल का साहस बहुत बढ़ गया । भविष्य के कार्य की बहुत बड़ी आशा बँध गई । नवयुवकों का भी उत्साह बढ़ा । दल के ऊपर जितना कर्ज था, निपटा दिया गया । अस्त्रों की खरीद के लिए लगभग एक हजार रुपए भेज दिए गए । प्रत्येक केंद्र के कार्यकर्त्ता को यथास्थान भेजकर दूसरे प्रांतों में भी कार्यविस्तार करने का निर्णय लिया गया । एक युवक दल ने बम बनाने का प्रबंध किया ।

काकोरी की यह रेल डकैती ब्रिटिश सरकार को खुली चुनौती थी । अगले दिन अखबारों में इस घटना का सनसनीपूर्ण समाचार छपा । 'इंडियन टेलीग्राफ' ने लिखा था कि डकैती में तीन व्यक्ति मारे गए हैं, जिनमें एक गोरा भी है । किंतु यह खबर एकदम गलत थी । घटना के समय कोई गोरा नहीं मारा गया था, सिर्फ एक भारतीय मुसलमान को एक डिब्बे से दूसरे डिब्बे में जाते समय गोली लग गई थी । वह व्यक्ति शायद हरदोई का निवासी था और उसका नाम अमजद अली जैसा कुछ था । जिस गोरे के मारे जाने की अफवाह थी, वह फौज का मेजर या कर्नल था जिसने गोली चलने के समय अपने डिब्बे के दरवाजे और खिड़कियाँ बंद कर ली थीं और उन्हें लखनऊ सुरक्षित पहुँच जाने पर ही खोला था ।

काकोरी की इस घटना के बाद बिस्मिल उत्साहित थे । उन्होंने पुनः दल की केंद्रीय समिति के साथ-साथ कुछ खास जिला संगठनकर्त्ताओं को मेरठ स्थित अनाथालय में 13 सितंबर को एकत्र होने के लिए लिखा । पत्र अंग्रेजी में था, जिसका अनुवाद इस प्रकार है—

मेरे प्यारे,

हम अच्छी तरह से हैं । संभवत: आपको मालूम ही होगा कि हमारे पितामह का श्राद्ध संस्कार इस महीने की तेरहवीं तारीख (रविवार) को होगा । उसमें आपकी उपस्थिति अनिवार्य है । अत: निवेदन है कि नियत समय पर पहुँचें और कृतार्थ करें ।

आपका,
रुद्र ।

पुनश्च : कृपया इस महीने की बारहवीं तारीख को दिल्ली के लिए प्रस्थान करें । वहाँ से आपको बड़ी आसानी से गाड़ी मिल जाएगी । आप मुझे अनाथालय में मिल सकेंगे ।

'रुद्र', 'महंत' और 'आनंद प्रकाश परमहंस' रामप्रसाद बिस्मिल के छद्म नाम थे । उनके पत्र से पता लगता है कि वे कितनी सावधानी से दल का काम चला रहे थे । मेरठ में हुई क्रांतिकारियों की केंद्रीय समिति की इस बैठक में काकोरी में किए गए सफल 'ऐक्शन' पर प्रसन्नता व्यक्त की गई और यह तय किया गया कि इसके बाद कुछ बड़े नगरों के डाकखानों को लूटा जाएगा ।

उधर सरकार ने रेल डकैती का पता लगाने का काम तेजी से शुरू कर दिया । पुलिस समझ गई थी कि यह क्रांतिकारियों का कार्य है । क्योंकि डकैती का राजनैतिक स्वरूप स्पष्ट हो गया था । चारों ओर खुफिया पुलिस का जाल फैला दिया गया था और सरकार ने डकैती में सम्मिलित किसी व्यक्ति को पकड़वाने के लिए पाँच हजार रुपए इनाम की घोषणा कर दी थी । इस सूचना के इश्तहार प्रत्येक रेलवे स्टेशन और थाने पर चस्पा कर दिए गए थे । क्रांतिकारियों का काम जानकर जनता को ऐसे लोगों से सहानुभूति हो गई थी और लोग नए-नए किस्से बुनने लगे थे । वे अपनी कल्पना में क्रांतिकारियों की अलग-अलग तस्वीरें बना रहे थे । उनकी दृष्टि में ब्रिटिश सरकार को इस तरह चुनौती देनेवाले लोग देशभक्त और वीर थे ।

सरकार तय नहीं कर पा रही थी कि वह क्या करे । उसे ऐसी

सूचनाएँ मिल गई थीं कि क्रांतिकारी दल का संगठन निरंतर मजबूत होता जा रहा है और उत्तर भारत के लगभग प्रत्येक जिले में उसका आधार निर्मित हो गया है । ऐसी स्थिति में सुराग मिलते ही सरकार ने गिरफ्तारियों का निर्णय ले लिया । 26 सितंबर, 1925 की रात्रि को पूरे उत्तर भारत में एक साथ संदिग्ध लोगों के घरों पर छापे डाले गए । यद्यपि इस रेल डकैती में सिर्फ दस क्रांतिकारियों ने हिस्सा लिया था, पर छापों के समय विभिन्न स्थानों पर चालीस से ऊपर लोग गिरफ्तार कर लिए गए । मुख्यतः गिरफ्तारियाँ शाहजहाँपुर, बनारस, इलाहाबाद, कानपुर आदि स्थानों पर हुईं । योगेशचंद्र चटर्जी की गिरफ्तारी 1924 में ही हो चुकी थी, फिर भी वे इस केस में ले आए गए ।

दल के नेता रामप्रसाद बिस्मिल की गिरफ्तारी शाहजहाँपुर में उनके मकान पर हुई । काकोरी की डकैती के बाद पुलिस सचेत हो गई थी । बहुत से क्रांतिकारी उस समय तक फरार नहीं हुए थे । उन्हीं दिनों शहर में डकैती के एक-दो नोट निकल आए जिसमें पुलिस का संदेह बढ़ गया । यद्यपि बिस्मिल ने पाँच-पाँच और दस-दस रुपए के नोटों को सौ रुपए वाले नोटों में तब्दील करा लिया था, फिर भी चार-छह नोट असावधानीवश किन्हीं कार्यकर्त्ता के पास पहुँच गए थे, जो बाद में हार्टन के हाथ पड़ गए और इस प्रकार क्रांतिकारी पार्टी का सुराग मिल गया । एक-दो मित्रों ने बिस्मिल से सावधान रहने को भी कहा, पर उन्हें अपनी बुद्धिमता पर अधिक विश्वास था और वे यह भी समझते थे कि पकड़े जाने पर उनके विरुद्ध पुलिस को सबूत नहीं मिल सकेगा । बिस्मिल की उस समय की मानसिक स्थिति कुछ विचित्र-सी थी । लगता था कि 'मैनपुरी षड्यंत्र केस' से लेकर उस समय तक के क्रांतिकारी जीवन ने उन्हें कुछ थका दिया था । शायद इसी कारण वे उस समय सोचने लगे थे कि पकड़े जाने पर उन्हें जेल-जीवन का कुछ अनुभव भी मिल सकेगा और क्रांतिकारियों के प्रति देश की सहानुभूति की परीक्षा भी हो जाएगी ।

क्रांतिकारी जीवन के प्रति बिस्मिल के दृष्टिकोण में यह परिवर्तन अचानक नहीं हुआ था । नरहत्याओं और डकैतियों के एक लंबे सिलसिले तथा अनेक मित्रों के विश्वासघात ने उन्हें यह सोचने पर

मजबूर कर दिया था और वे हतबुद्धि-से हो गए थे । आत्मकथा में उन्होंने उस समय की मानसिक स्थिति का खुलकर वर्णन किया है ।

··· बिस्मिल उस रात के लगभग 11 बजे अपने मित्र के घर से लौटे तो रास्ते में खुफिया के कुछ सिपाही उन्हें मिल गए, जो उन पर दृष्टि रखे हुए थे । पर वे उस सबसे बेखबर मकान पर जाकर सो गए । प्रातः 4 बजे उठने पर उन्हें बाहर आहट महसूस हुई । दरवाजा खोलकर बाहर निकलते ही एक पुलिस अफसर ने बढ़कर उनका हाथ पकड़ लिया । बिस्मिल उस समय खाली हाथ थे और शरीर पर केवल एक अँगोछा पहने हुए थे । पुलिसवालों के लिए यह स्थिति काफी सुविधाजनक थी । एक क्रांतिकारी की गिरफ्तारी को लेकर उस दिन वे बहुत डरे हुए थे, पर उनके सामने वैसी कोई दिक्कत नहीं आई । उन्होंने बिस्मिल से पूछा—"यदि घर में कुछ हथियार हो तो दे दीजिए ।"

मकान की तलाशी में बिस्मिल के लिखे तीन-चार पत्र मिले । हथियार कोई नहीं मिला । उन्हें बिना हथकड़ी के कोतवाली ले जाया गया और बाद को जेल भेज दिया गया ।

बिस्मिल को उस समय तक किसी अन्य की गिरफ्तारी का कोई समाचार नहीं मिला था । केवल अनुमान था कि कुछ और लोग भी पकड़े गए होंगे और दूसरे शहरों में भी पुलिस ने इसी तरह छापे डाले होंगे । अपनी कलम से उन्होंने यह दर्ज किया है कि उस समय शहर में किसी से इतना भी न हो सका कि जेल में हम लोगों के पास समाचार भेजने का प्रबंध कर देता । ऐसी ही शिकायत बिस्मिल ने अपने शहर के बारे में उस समय की थीं जब वे 'मैनपुरी षड्यंत्र केस' की आममाफी के पश्चात सार्वजनिक रूप से सामने आए । उन दिनों शहर का कोई परिचित व्यक्ति भी उनके पास खड़ा होने को तैयार नहीं होता था और तब भी जब उनकी गिरफ्तारी के बाद शाहजहाँपुर का कोई वकील उनकी मदद के लिए आगे नहीं आया ···

उस दिन प्रेमकिशन खन्ना, इंदुभूषण मित्र, हरगोविंद और बनारसीलाल भी पकड़ लिए गए । ठाकुर रोशनसिंह भी पुलिस की गिरफ्त में आ गए । परंतु अशफ़ाक़उल्ला ख़ां पुलिस को चकमा देकर फरार हो गए । वे अपने घर से आधे मील के अंदर ही ईख के खेत में जा

छिपे । उनके बड़े भाई रियासतउल्ला ख़ाँ (अब स्वर्गीय) के शब्दों में उस घटना का वर्णन देखिए, जब 26 सितंबर को सबेरे पुलिस अशफ़ाक़उल्ला की तलाश में उनके घर पहुँची लेकिन अशफ़ाक़ नहीं मिले । रियासत ख़ाँ ने बताया था—"उस दिन सवेरे चार बजे, जबकि मैं अपने मकान में सो रहा था, सोकर उठा था क्योंकि सुबह को मैं बराबर चार बजे बगरज अदा करने नमाज उठा करता था । मेरी बीबी मुझसे पहले उठी थी और वजूह करके कमरे में नमाज अदा कर रही थी । मैंने लोटा लिया और पानी लेने की गर्ज से जा रहा था कि किसी ने दरवाजे की कुंडी बजाई । मैंने लोटा रख दिया और दरवाजे पर गया । किवाड़ खोले तो क्या देखता हूँ कि मेरी बाहरी बैठक में पुलिस और सशस्त्र पुलिस के लोग जमा हैं । एक सब-इंसपेक्टर पुलिस सी. आई. डी. मुंशी फ़साहत हुसैन खड़े हैं । मैंने दरयाफ़्त किया कि क्या मामला है । मुंशी फ़साहत हुसैन ने फरमाया कि तलाशी लेंगे । मैंने कहा कि तलाशी सूरज डूबने और निकलने के दरम्यान नहीं ली जा सकती है । सब-इंसपेक्टर साहब ने फ़रमाया कि हम कलक्टर जिला से इज़ाज़त हासिल कर चुके हैं । मैंने कहा बेहतर है लेकिन यह बताइए कि किस चीज की आपको तलाश है । अगर मेरे इल्म में है, तो वह मैं दाखिल कर दूँगा । सब-इंसपेक्टर साहब ने घबराकर वारंट तलाशी के बजाए वारंट गिरफ्तारी मेरे हाथ में दे दिया । मैंने उसमें हुक्म अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ के अरेस्ट का देखा । मैंने सब-इंसपेक्टर साहब से कहा कि यह तो अंग्रेजी में है । मैं अंग्रेजी पढ़ा हुआ नहीं हूँ । सब-इंसपेक्टर साहब फ़साहत हुसैन ने वह वारंट मेरे हाथ से ले लिया और कहा कि प्रतापगढ़ जिला में डाका पड़ा है । उसका माल तलाशी लेकर मैं देखना चाहता हूँ । मैंने कहा कि मेरे यहाँ इस किस्म का कोई माल नहीं है । आप तलाशी ले लें । लेकिन तलाशी से पेश्तर अपनी जामा तलाशी मुझको दे दीजिए और यह बताइए कि तलाशी के गवाह कौन हैं । उन्होंने बताया कि यह दो अहीर हैं (जो मेरे आसामी रियाया थे) । मैंने सब-इंसपेक्टर फ़साहत हुसैन की जामा तलाशी ली । बाद को दो कांस्टेबिल चौकी पुलिस जलालनगर (अब अशफ़ाक़नगर) के सब-इंसपेक्टर साहब ने फ़रमाया कि इनकी तलाशी ले लीजिए, यह अंदर जाएँगे । मैंने कहा कि ये कांस्टेबिल हमारी चौकी के हैं । हम

इनको जानते हैं, ये हमको जानते हैं । इनकी तलाशी की ज़रूरत नहीं है । एक हवलदार आर्म्ड पुलिस और एक कांस्टेबिल आर्म्ड पुलिस को कहा कि यह भी अंदर जाएँगे । मैंने उन दोनों की जामा तलाशी ली और मैंने कहा कि पर्दा करा दूँ । सब-इंस्पेक्टर ने फ़रमाया कि यहीं से पुकार दीजिए । 'आप क्या कहते हैं'—मैंने बिगड़कर कहा । वह ख़ामोश हो गए । मैंने अंदर कदम रखते हुए आवाज़ दी कि नमाज़ की नीयत तोड़ दो और फ़ौरन ऊपर चली जाओ । मेरी बीबी ने नीयत तोड़ दी और ऊपर छत पर चली गई । अशफ़ाक़उल्ला दालान में सो रहे थे । फ़ौरन उठे । मैंने कहा तलाशी होगी । उन्होंने कहा कि मैं गिरफ़्तार हो जाऊँगा । यह कहकर फौरन बक्स के पास गए जो वहीं रखा था क्योंकि उसमें 'बैन गार्ड' अखबार, जो मास्को से जारी होकर आयरलैंड से आता था, जिसका दाखिला हिंदुस्तान में ममनूअ था, अशफ़ाक़ के नाम से हर माह आता था । उसकी कापियाँ दस या ग्यारह थीं, वे लेकर फ़ौरन ऊपर चले गए । यह काम ग़ालिबन एक मिनट में हो गया । मैंने सब-इंसपेक्टर साहब से कहा कि आइए । दरवाज़े पर मैंने सैयद मतलूब हसन को खड़ा कर दिया कि इन लोगों के अलावा किसी को अंदर न आने देना । दरोगा जी साहब हसन (आँगन) में बैठ गए । कुर्सी डाल दी गई थी । आर्म्ड पुलिस के हवलदार और कांस्टेबिल खड़े रहे लेकिन बहुत होशियारी से खड़े थे । मुझसे मुंशी फ़साहत हुसैन ने फ़रमाया कि आप मुझको नहीं जानते हैं । आपके भाई अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ बखूबी जानते हैं । वह आ जाएँगे तो बातचीत होगी । मैंने कहा कि अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ तो आपको न मिलेंगे क्योंकि वह मेरा ख़याल है कि सौ मील से भी आगे जा चुके होंगे । मैंने कहा कि मुंशी फ़साहत हुसैन घबड़ा गए और कहा कि कहाँ को गए हैं । मैंने कहा कि रात करीब बारह बजे किसी ने कुंडी मारी । अशफ़ाक़उल्ला दरवाजे पर गए । एक सब-इंसपेक्टर पुलिस थे । उन्होंने अशफ़ाक़उल्ला से कहा कि फौरन दूर निकल जाओ, वरना गिरफ़्तार हो जाओगे । अशफ़ाक़उल्ला ने अपना बिस्तर और कपड़े लिए और मेरे चार सौ रुपए रखे हुए थे, वे लेकर चले गए । मुंशी फ़साहत हुसैन सब-इंसपेक्टर ने मुझसे घबड़ाकर दरयाफ़्त किया—"उन सब-इंसपेक्टर का नाम क्या है ।" मैंने कहा कि क्या खूब । उस बेचारे

ने तो हमदर्दी की और हम उनका नाम बता दें । यह शराफ़त से बाहर है । तलाशी वगैरह कुछ न ली । बंदूक माँगी । मैंने उनसे तहरीर ले ली कि बंदूक एक शीशम के बड़े संदूक में जिसमें ताला पड़ा था, उसकी कुंजी बड़े भाई मुहम्मद शफ़ीउल्ला ख़ाँ के कमरबंद से बँधी थी । संदूक खोला और बंदूक मैंने फ़साहत हुसैन को दे दी । मुंशी फ़साहत हुसैन ने कहा कि आप मेरे हमराह चलें । अगर इंसपेक्टर साहब कहेंगे तो वापस कर दी जाएगी । मैं उनके साथ कोतवाली सदर शाहजहाँपुर गया । मुंशी फ़साहत हुसैन ने इंसपेक्टर साहब से दरयाफ़्त किया, उन्होंने बंदूक वापस करने से इनकार कर दिया । मैं मकान वापस आया । अशफ़ाक़उल्ला मकान के बालाखाने पर मौज़ूद थे । मैंने उनसे दरयाफ़्त किया कि यह क्या मामला है तो उन्होंने मुझसे कहा कि मैं रिवोल्यूशनरी पार्टी का मेंबर हूँ, यानी खुफिया सोसाइटी का । जब मुझको मालूम हुआ ।''

इसके पश्चात अशफ़ाक़उल्ला शाहजहाँपुर से फरार हो गए और पुलिस के हाथ नहीं आए । मन्मथनाथ गुप्त बनारस में थे । 25 सितंबर की रात को ही पुलिस ने उनके मकान का घेरा डाल दिया । सवेरे दरवाजा खोलते ही वे गिरफ्तार कर लिए गए । उनके मकान की तलाशी में संदूक से दल के संविधान 'पीला कागज' की एक प्रति भी बरामद हुई । सबूत की दृष्टि से पुलिस के लिए यह उपयोगी थी ।

मन्मथनाथ गुप्त को जिस समय गिरफ्तार किया जा रहा था, ठीक उसी समय बनारस में एक दर्जन मकानों में तलाशी ली जा रही थी और हर संदिग्ध व्यक्ति को पकड़ा जा रहा था । राजेंद्र लाहिड़ी के घर पर छापा मारा गया किंतु वे दल की ओर से बम बनाना सीखने के लिए कलकत्ता जा चुके थे । चंद्रशेखर आज़ाद के कमरे में भी तलाशियाँ हो रही थीं पर वे भी गायब थे । शचींद्रनाथ बख्शी उस दिन गिरफ्तारी से बाल-बाल बच गए । वे शाम को मुफ्त के एक सामाजिक थिएटर में चले गए थे । देर रात को जब नाटक समाप्त हुआ तो कुछ युवकों ने उनसे दुर्गाबाड़ी चलने का अनुरोध किया । यद्यपि बख्शी जी कोई धार्मिक व्यक्ति नहीं थे पर वे युवकों का कहना मानकर उनके साथ चले गए । बख्शी जी इस तरह नौजवानों के बीच घुल-मिलकर दल के लिए

उपयुक्त व्यक्तियों की खोज कर लेते थे । थिएटर तक उनके पीछे खुफिया पुलिस का जो आदमी आया था, वह निश्चित हो गया कि नाटक खत्म होने पर अब बख्शी जी घर पर पहुँचेंगे । लेकिन बख्शी जी को प्रातः दुर्गाबाड़ी से लौटते हुए पुलिस की खबर लग गई । वे तुरंत छिप गए और फिर बहुत दिन तक पुलिस के हाथ नहीं आए । उनकी फरारी के बाद उनके घर की सभी चल व अचल संपत्ति जब्त कर ली गई । उनके पिता कालीचरण बख्शी की आँखों के सामने घर पर रात को छापा मारकर कपड़ा-लत्ता, घी-चावल और दाल तक पुलिस उठा ले गई । उसने यह भी परवाह नहीं की कि कपड़ों के अभाव में परिवार में व्यक्ति कैसे रहेंगे । कानपुर के सुरेशचंद्र भट्टाचार्य उन दिनों दुर्गा पूजा मनाने बनारस आए हुए थे और वे भी यहीं गिरफ्तार कर लिए गए । रामनाथ पांडेय को भी उस दिन यहीं पकड़ा गया ।

कानपुर में वीरभद्र तिवारी और रामदुलारे त्रिवेदी को गिरफ्तार किया गया । राजकुमार सिन्हा भी यहीं घर पर पकड़ लिए गए और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के जिस कमरे में वे रहते थे, उसमें तलाशी में दो रायफलें बरामद हुईं । पूना में रामकृष्ण खत्री को पकड़ लिया गया, जो उन दिनों 'गोविंद प्रकाश' के नाम से दल की ओर से मध्य प्रांत में संगठन का कार्य देखने के लिए भेजे गए थे ।

इलाहाबाद में भूपेंद्रनाथ सान्याल विचित्र तरीके से पुलिस के हाथ आ गए । वहाँ हीवेट रोड पर जब एक बंगाली छात्र बम लेकर जा रहा था तो अचानक बम का विस्फोट हो गया । वह छात्र घायल हो गया और पकड़े जाने पर उसने भूपेंद्रनाथ सान्याल का नाम ले लिया और इस तरह प्रसिद्ध सान्याल परिवार में भूपेंद्रनाथ को काकोरी के मुकदमे में ले आया गया । पुलिस उनके घर से सारा सामान भी उठा ले गई ।

शचींद्रनाथ सान्याल कैदी की हालत में थे । सन् 1924 में बंगाल आर्डिनेन्स में उनके विरुद्ध वारंट निकला था, पर वे फरार हो गए और पकड़े नहीं जा सके । बाद को 1925 में वे गिरफ्तार हुए तो उन पर 124 ए का मुकदमा चलाया गया जिसमें उन्हें दो साल की सजा दी गई । इस तरह जब वे लखनऊ लाए गए तो वे कैदी थे ।

लखनऊ में गोविंदचरण कार और शचींद्र विश्वास गिरफ्तार हो गए । विश्वास बंगाल के पवना नामक स्थान के रहनेवाले थे, पर वे

संयुक्त प्रांत में बस गए थे और गिरफ्तारी के समय लखनऊ में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। इसी तरह मेरठ में विष्णु शरण दुबलिश, मथुरा में शिवचरण लाल और रायबरेली में बनवारी लाल को पकड़ा गया। इसके अतिरिक्त चंद्रभाल जौहरी, मोहनलाल गौतम और ज्योतिशंकर दीक्षित भी पकड़े गए, पर शिवचरण लाल सहित इन लोगों को मुकदमा चलने से पहले ही छोड़ दिया गया। इनमें इलाहाबाद के ज्योतिशंकर बहुत खुशमिजाज आदमी थे। जेल कर्मचारी इनकी खुशहाली देखकर कुढ़ा करते थे। जब स्पेशल मजिस्ट्रेट द्वारा इन्हें छोड़ा जाने लगा तो वे अनुरोधपूर्वक अदालत से बोले—"तो क्या छोड़ ही दीजिएगा। अरे एक दिन तो और रह लेने दो।"

हम पहले ही बता चुके हैं कि राजेंद्रनाथ लाहिड़ी कलकत्ता में बम बनाना सीखने गए हुए थे, जिसके कारण बनारस में हुई तलाशियों में पुलिस उन्हें नहीं पा सकी। पर दो महीने बाद ही कलत्ता के निकट दक्षिणेश्वर गाँव में आठ अन्य व्यक्तियों के साथ वे गिरफ्तार करके इस मुकदमे में ले आए गए।

जबलपुर में प्रणवेश चटर्जी पकड़े गए। इसी तरह बनारस में बाद को मुकुंदीलाल भी पुलिस के हाथ आ गए और दामोदर स्वरूप सेठ भी। इन लोगों को जल्दी ही लखनऊ भेज दिया गया।

पुलिस को गिरफ्तारियों में आवश्यक सबूत हाथ लग गए थे। गोविंदचरण कार के निवास से भी पीले कागज का दूसरा पर्चा बरामद हो गया था और प्रणवेश के घर से दल के नियमों की दो टंकित प्रतियाँ पुलिस ले गई थी।

क्रांतिकारियों की चालीस से ऊपर गिरफ्तारियाँ देश के वातावरण में एक नई हलचल ले आईं। जनता में सरकार विरोधी भावना तेजी से फैलने लगी थी और क्रांतिकारियों के प्रति लोगों की सहानुभूति देखते ही बनती थी। समाचार पत्रों में इस घटना से संबंधित सूचनाओं को क्रांतिकारियों का पक्ष लेकर प्रकाशित किया जा रहा था। 'प्रताप' ने तो 'देश के नररत्न गिरफ्तार' शीर्षक देकर एक विस्तृत रिपोर्ट छापी थी। वैसे भी 'प्रताप' और उनके संपादक गणेशशंकर विद्यार्थी की सहानुभूति देश-भर के क्रांतिकारियों के साथ थी और वे उन्हें हर तरह से सहयोग

भी करते थे। कहा जाता है कि एंग्लो-इंडियन अखबारों की भूमिका अवश्य सरकार के पक्ष में थी, पर वे भी उस समय के वातावरण और क्रांतिकारियों को जनता से मिलनेवाली हमदर्दी की उपेक्षा नहीं कर सकते थे।

गिरफ्तार क्रांतिकारियों में कई बाद को छोड़ दिए गए और शेष पर लखनऊ की अदालत में मुकदमे की कार्यवाही शुरू की गई। पुलिस ने पकड़े गए अनेक व्यक्तियों पर दबाव डालकर सरकारी गवाह बनाने का प्रयत्न किया। सरकारी खजाने की लूट के बारे में जानने के लिए वह हर उपाय कर रही थी। शाहजहाँपुर जिले में जो लोग पकड़े गए, उस पर रामप्रसाद बिस्मिल स्वयं आश्चर्यचकित थे कि पुलिस को उनके बारे में किस सूत्र से जानकारी प्राप्त हुई। बनारसीलाल सरकारी गवाह बन गया था और उसने कई महत्त्वपूर्ण रहस्य पुलिस को बता दिए थे। वह सरकारी गवाह कैसे बना, इसकी जानकारी हमें बिस्मिल की आत्मकथा में मिलती है—''थोड़े दिनों में एक मित्र ने भयभीत होकर कि कहीं वह भी न पकड़ा जाए, बनारसीलाल से भेंट की और समझा-बुझाकर उसे सरकारी गवाह बना दिया। बनारसीलाल बहुत घबड़ाता था कि कौन सहायता देगा, सज़ा जरूर हो जाएगी। यदि किसी वकील से मिल लिया होता हो उसका धैर्य न टूटता। पं. हरकरननाथ शाहजहाँपुर आए। जिस समय वह अभियुक्त प्रेमकिशन खन्ना से मिले, उस समय अभियुक्त ने पं. हरकरननाथ से बहुत कुछ कहा कि मुझसे व दूसरे अभियुक्तों से मिल लें। यदि वह कहा मान जाते और मिल लेते तो बनारसीलाल को साहस हो जाता और वह डटा रहता। उसी रात को पहले एक इंसपेक्टर बनारसीलाल से मिले। फिर जब मैं सो गया तब बनारसीलाल को निकालकर ले गए। प्रातः पाँच बजे के करीब, जब बनारसीलाल की कोठरी में से कुछ शब्द न सुनाई दिया, तो मैंने बनारसीलाल को पुकारा। पहरे पर जो कैदी था, उससे मालूम हुआ कि बनारसीलाल बयान दे चुके। बनारसीलाल के संबंध में सब मित्रों ने कहा था कि इससे अवश्य धोखा होगा, पर मेरी बुद्धि में कुछ न समाया था। प्रत्येक जानकार ने बनारसीलाल के संबंध में यही भविष्यवाणी की थी कि वह आपत्ति पड़ने पर अटल न रह सकेगा। इस कारण सबने उसे

किसी प्रकार से गुप्त कार्य में लेने से मनाही की थी । अब तो जो होना था सो हो ही गया ।''

बनारसीलाल इस मुकदमे का एक मुख्य गवाह था, इसलिए यह अच्छा होगा कि उसके संबंध में यहाँ यह भी बता दिया जाए कि उनकी पत्नी ने भी उसे मुखबिर बनाने में मुख्य भूमिका अदा की । वह जब जेल में बनारसी से मिलने आई तो बोली कि मैं भूखों मर रही हूँ । पत्नी ने ये झूठ बोला था, क्योंकि बनारसी संपन्न परिवार का था और उसके पिता मरते समय उसके लिए भारी संपत्ति और मकान छोड़ गए थे । यद्यपि बुरी संगत में पड़कर उसने धन को बरबाद भी बहुत किया था, पर बाद को वह कांग्रेस में काम करने लगा था । जिन दिनों वह काकोरी का मुखबिर बना, वह शाहजहाँपुर नगर कांग्रेस कमेटी का निर्वाचित मंत्री था । बिस्मिल ने उसे यह समझकर दल में ले लिया था कि उसने अपने को सुधार लिया है । लेकिन बाद को उन्हें इस बात का बहुत दुख रहा । सबसे विचित्र बात यह थी कि उसे अपने मुखबिर बनने पर कोई पश्चाताप या लज्जा नहीं महसूस हुई बल्कि उसके व्यवहार से लगता था कि अपने इस कृत्य से वह प्रसन्न है । पत्नी ने बनारसी से जब यह कहा कि वह पैसों की व्यवस्था करे, तो उसे एक बहाना मिल गया और उसने बिस्मिल से कुछ रुपए दिलाने की बात की । बिस्मिल ने स्पष्ट कह दिया कि जो धन इस समय बचा है, वह पार्टी का है और उसे पार्टी के कार्य में ही व्यय किया जा सकता है । बनारसीलाल यह सुनकर आग-बबूला हो गया और उसने बिस्मिल से झगड़ा कर लिया । इसके तुरंत बाद ही उसने बयान दे दिया । वास्तविकता यह थी कि बनारसी के बयान के पहले पुलिस के पास मुकदमे को खड़ा करने का कोई-का-कोई आधार नहीं था । यद्यपि बनारसी ने बिचपुरी गाँव की एक डकैती में ही हिस्सा लिया था, पर दल का सदस्य होने के नाते कुछ अनुमान व सुनी-सुनाई बातों के आधार पर उसने पुलिस को कुछ सुराग बता दिए । उसका बयान इसलिए भी महत्त्व रखता था कि उसे ही इस बात का पता था कि शाहजहाँपुर में बिस्मिल से मिलने बाहर से कौन-कौन आता है और कि कई बार बाहर से आए लोगों को उसी के घर ठहराया गया था । बनारसी को मुखबिर बनने का लाभ यह मिला कि उसे जेल से बाहर पुलिस की

हवालात में रखा गया और कुछ सुविधाएँ भी दी गईं।

पुलिस ने यह व्यवस्था कर ली थी कि प्रत्येक गिरफ्तार व्यक्ति से अलग-अलग बात करके रहस्यों का पता लगाया जा सके। बिस्मिल के लिए यह बहुत दुखद था कि उनके शहर का हाईस्कूल का एक छात्र इंदुभूषण मित्र भी सरकारी गवाह बन गया। उसके पिता स्थानीय नगरपालिका में हेल्थ अफसर थे और रामप्रसाद बिस्मिल अपनी डाक इंदुभूषण के पते पर मँगा लिया करते थे। पुलिस को इस तथ्य का पता चल गया और इंदुभूषण की गद्दारी यह थी कि वह पुलिस के निर्देशानुसार बिस्मिल की डाक अपने हेडमास्टर को नकल करा दिया करता था। पर मुकदमे के दौरान इंदुभूषण ने जब बयान दिया तो वह अपने किए पर बहुत पछताता हुआ लग रहा था। एक बार शिनाख्त के समय तो उसने राजेंद्रनाथ लाहिड़ी को पहचानने से ही मना कर दिया। बोला—"आई एम नाट वर्थ टचिंग हिम" अर्थात "मैं इन्हें स्पर्श करने योग्य नहीं हूँ।" उसके इस वाक्य पर सरकारी वकीलों के चेहरे फक पड़ गए। यही नहीं उसने शिनाख्त के समय अनेक अभियुक्तों को जान-बूझकर नहीं पहचाना। मन्मथनाथ गुप्त के अनुसार—"इसका एक उदाहरण तो यह है कि उसने मुझे ही नहीं पहचाना। इस प्रकार उसने मेरी जो शिनाख्त नहीं की, वह गलती के कारण नहीं, बल्कि उसने मुझे छोड़ दिया। वह मुझे अच्छी तरह जानता था। जब भी मैं शाहजहाँपुर के पंडित रामप्रसाद के यहाँ जाता था, और ऐसा औसतन महीने में एक बार करता था, तो मुझसे उसकी भेंट होती थी। कई मौकों पर खन्नौत के किनारे हम दोनों टहलने जाया करते थे।"

ऐसा लगता था कि बाद को इंदुभूषण उस प्रक्रिया का शिकार हुए, जिससे होकर पुलिस के बनाए मुखबिरों को गुजरना पड़ता था। उसे घोर मानसिक यातनाएँ झेलनी पड़ीं।

इसी तरह बनवारीलाल भी सरकारी गवाह बने और उन्होंने एक लंबा बयान दे दिया। अपनी गिरफ्तारी के पहले वह रायबरेली में दल के जिला संगठन कर्त्ता थे और गिरफ्तार होने से पूर्व असहयोग आंदोलन के दौरान छह महीने की सजा काट चुके थे। पर इस बार उन्हें लगा कि सजा बड़ी होगी। यदि यह पता होता कि थोड़ी सजा पाकर बाद को

मुक्ति मिल जाएगी तो वह डिगते नहीं। यहाँ पहले ही यह बता दूँ कि सरकारी गवाह बन जाने के बाद भी उन्हें मुकदमे में पाँच-पाँच साल की सजा दो धाराओं में दे दी गई।

दल के नेता रामप्रसाद बिस्मिल को भी सरकारी गवाह बनाने के कुछ कम प्रयास पुलिस और सरकार द्वारा नहीं किए गए। खुफिया पुलिस के कप्तान बिस्मिल से कई बार मिले और बड़ी सहानुभूति दिखाने का नाटक किया। थोड़े ही दिनों बाद जिला कलक्टर ने भी उनसे मुलाकात की और उन्हें फाँसी तक का भय दिखाया। बोले—"बचना हो तो बयान दे दो।" पर बिस्मिल यह सब चुपचाप सुन रहे थे। खुफिया पुलिस के कप्तान ने उन्हें कई कागज भी दिखाए, जिनसे यह अनुमान लगा कि कई गुप्त रहस्य पुलिस के हाथ लग चुके हैं और उनका रास्ता काफी आसान होता जा रहा है। यह देखकर बिस्मिल चौंके और उन्होंने कुछ बातें बनाकर पुलिस कप्तान को भ्रम में डालने का प्रयत्न किया। पर पुलिस कप्तान को तो कई विश्वसनीय सूत्र हाथ लग चुके थे, वे बिस्मिल की बातों पर क्यों जाते। फिर भी कप्तान बोला यदि वे बंगाल से अपना ताल्लुक बताकर कुछ बोलशेविकों के विषय में अपना बयान दे दें तो उन्हें थोड़ी-सी सज़ा करा दी जाएगी और सज़ा के थोड़े दिनों बाद ही जेल से निकालकर इंग्लैंड भेज दिया जाएगा तथा सरकार से पंद्रह हजार रुपए पारितोषिक भी दिला दिया जाएगा।

बिस्मिल ऐसे प्रस्तावों को सुनकर मन-ही-मन हँस रहे थे। अधिकारियों को क्या पता था कि वे उस धातु के बने थे जिसे कहीं से झुकाया नहीं जा सकता। और बिस्मिल से जब अगले दिन एक कप्तान मिलने आया तो उन्होंने अपनी कोठरी से निकलने से इनकार कर दिया। कप्तान कोठरी पर जाकर बहुत-सी बातें कहता रहा और थककर चला गया।

बनारस में पुलिस किसी को भी सरकारी गवाह बनाने में कामयाब नहीं हुई। क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में यह दर्ज है कि आगे चलकर भी पुलिस कभी इस शहर से मुखबिर बनाने में समर्थ नहीं हुई। रामनाथ पांडेय को सरकारी गवाह बनाने के लिए इस शहर में बहुत प्रयत्न किए गए। हिंदू स्कूल के हेडमास्टर रामनारायण मिश्र को इस काम

के लिए लाया गया जो छात्रों के बीच बहुत असर रखते थे। पर रामनाथ पांडेय अपने रास्ते से हटे नहीं। उन्हें अपने हेडमास्टर मिश्र जी के कारनामे से बहुत धक्का लगा था।

अशफ़ाक़उल्ला शाहजहाँपुर से फरार होकर गुप्त रूप से नेपाल चले गए। परंतु वहाँ वे ठहर नहीं सके और लखनऊ होते हुए गणेश शंकर विद्यार्थी के पास कानपुर चले आए। खाँ को उन्होंने वहाँ से बनारस भेज दिया। बनारस शहर उस समय पार्टी का अच्छा केंद्र था। अशफ़ाक़ वहाँ दल के लोगों से मिलकर बिहार निकल गए और पलामू में डाल्टनगंज के एक दफ्तर में नौकरी करने लगे। वहाँ उन्होंने अपने को मथुरा जिले का कायस्थ बताया। कहा जाता है कि वहाँ वे आठ-दस महीने तक एक ठेकेदार के यहाँ पचास रुपए मासिक पर नौकरी करते रहे।

मुझे पता लगा कि अशफ़ाक़उल्ला जब फरार थे, तो उनकी मुलाकात पंजाब के सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी लाला केदारनाथ सहगल से भी हुई। लाला जी ने उनसे कहा—"जेल में मैं फ्रंटियर के एक मशहूर लीडर के साथ कैद रहा था और उन्होंने मुझसे कहा था कि जब कभी किसी पालिटिकल कार्यकर्त्ता को खुफिया तौर पर सरहद पार कराना हो तो उसका इंतजाम हम कर सकते हैं। आप चाहें तो हम आपको हिफाजत से अंग्रेजी राज्य की सीमा से बाहर भेज सकते हैं।"

अशफ़ाक़ ने जवाब दिया—"मैं हिंदुस्तान से भागना नहीं चाहता। भई, किसी मुलसमान को भी फाँसी चढ़ने दो।"

अशफ़ाक़उल्ला के बड़े भाई रियासतउल्ला खाँ के संस्मरणों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि फरारी जीवन में अशफ़ाक़ एक दिन शाहजहाँपुर भी आए। उन्हीं के शब्दों में—"इलाहाबाद एक्सप्रेस से शाहजहाँपुर तीन बजे सुबह को उतरे। वे सिखों के भेष में थे। बालों का चोटा बँधा था। पगड़ी बाँधे थे। दाढ़ी भी कानों से लपेटे थे। एक कोट और सलवार पहने थे। हाथ में हैंड बैग और बेंत था। उतरकर टिकट गेट पर दिया। पुलिस और सी. आई. डी. मौजूद थी। किसी ने न

पहचाना और वे सीधे इस्लाम अली खेरादी के मकान पर आए । उससे

मिले और कहा कि मैं भाई मुहम्मद फक़ीरुल्ला ख़ाँ से मिलना चाहता हूँ । उसने कहा कि आज पंद्रह रोज हुए फक़ीरुउल्ला ख़ाँ का इंतकाल शिकार में गोली लगने से हो गया । यह सुनकर बहुत रोये । उनकी कब्र पर जाकर फातिहा पढ़ी और फिर मकान पर आए । दिन-भर मकान पर रहे । फिर रात को ग्यारह बजे की गाड़ी से रवाना होकर बिहार चले गए ।''

इसके बाद शाहजहाँपुर में अशफ़ाक़उल्ला के मकान पर पुलिस ने कुर्की की । इसका वर्णन रियासतउल्ला ख़ाँ ने जो लिखा, वह इस प्रकार है—''सर्दी निहायत सख्त थी । एकदम पुलिस के इंसपेक्टर मि. प्रभुदयाल सिंह क्रिश्चियन मय चार सब-इंसपेक्टरान करीब 12 बजे सब के सब, मेरे दरवाज़े पर आ गए और कुंडी मारी । मैंने दरवाज़ा खोला तो पुलिस को देखा । प्रभुदयाल सिंह इंसपेक्टर शराब के नशे में चूर था क्योंकि स्टेशन के होटल पर खूब शराब पीकर आए थे । मुझसे कहा कि हम कुर्की करने को आए हैं । मैंने कहा कि रात के वक्त । उस पर प्रभुदयाल सिंह इंसपेक्टर ने कहा कि घुस चलो अंदर । मुझको बेहद गुस्सा आया । मैंने कहा कि इंसपेक्टर साहब आपने क्या कहा कि बिला पर्दा कराए आप घर में चले जाएँगे, मेरी ज़िंदगी में तो ग़ैरमुमकिन है । मैंने फ़ौरन चाकू निकाल लिया और कहा कि कौन आता है, बढ़े । यह सब लोग सशस्त्र थे, रिवाल्वर, बंदूकें लिए थे, कुछ कांसटेबिल भी थे । मुझको बिगड़ा हुआ देखकर मिस्टर टीकाराम कोतवाल शहर ने कहा कि लल्लू खान साहब आप परदा करा दें, बिला पर्दा हम न जाएँगे । मैंने लौटकर घर में आवाज दी—परदा कर लो, ऊपर चली जाओ, माल की कुर्की होगी । मेरी माँ और मेरी बीवी उस बक्स को जिसमें कपड़े मेरी भतीजी की शादी के रखे थे, लेकर ऊपर बालाखाने पर चली गईं । मैंने पुलिस को बुला लिया, 'आइए ।' मेरा लड़का और लड़की दो पलँगों पर सो रहे थे । लड़का पाँच साल का था और लड़की चार साल की । उन लोगों ने आकर इनके हाथ पकड़कर जमीन पर खड़ा कर दिया और लिहाफ व बिस्तर दोनों के इस सख्त सर्दी में ले लिए, बल्कि पलँग भी ले लिए और सिर्फ चार पलँग और थे, वे ले लिए । मेरे भाई का बक्स कपड़ों का था, वह ले

लिया। मेरी बीबी का संदूकचा जेवर का ले लिया। हालाँकि मैंने घर में साफ तौर पर समझा दिया था कि कुर्की होगी, सब सामान उठवा दिया था। संदूकचा इत्फ़ाकन तौर से ज़रूरत की वजह से मँगाया गया था, पर वह वापस न किया गया, कुर्क हो गया। वे देगचियाँ जिनमें खाना था, वे न लीं। चिमटा, फुँकनी, तीन पायदान और दो सेर आटा गंदुम था और बिस्तर व कपड़े गर्म थे, कुछ सूती कपड़े कुछ मैले। कपड़े सब ले लिए। ये सब सामान और दो संदूक लकड़ी के सब ले लिए। गो कि मैंने कहा भी कि इसमें अशफ़ाक़उल्ला का कोई सामान नहीं है, लेकिन एक न माने, सब ले गए। मेरे दिल में कई बार आया कि प्रभुदयाल सिंह को मैं शूट कर दूँ, लेकिन महज इस ख़याल से कि शायद अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ इस मुकदमे में छूट जाएँ, अगर इनको शूट किया गया तो मामले की नौइयत खराब हो जाएगी, खामोश हो गया। मकान कुर्क कर लिया गया। मैंने कहा कि मकान में हिस्सा हम लोगों का नहीं है। मुकम्मल जायदाद वालिदा के नाम है, लेकिन मेरी बातों का कुछ ख़याल न किया गया…"

बिहार के डाल्टनगंज में रहते हुए अशफ़ाक़ ने बंगला भाषा सीख डाली। कभी-कभी वे बंगला में गीत भी गाते। जिस इंजीनियर के पास वे काम करते थे, वह शायरी का बहुत शौकीन था। उसे जब अशफ़ाक़उल्ला के बारे में पता लगा कि वे शायरी भी कर लेते हैं, तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। एक स्थानीय मुशायरे में अशफ़ाक़ ने जब कुछ अच्छे शेर पढ़े तो इंजीनियर महाशय ने खुश होकर उनका वेतन बढ़ा दिया। काकोरी केस के दूसरे फरार क्रांतिकारी शचींद्रनाथ बख्शी डाल्टनगंज से थोड़ी दूर भागलपुर और हजारीबाग में फरारी हालत में रह रहे थे, पर दोनों को एक दूसरे का पता नहीं था। दोनों क्रांतिकारियों को यह बात आगे चलकर पकड़े जाने पर ही मालूम हुई।

अशफ़ाक़उल्ला चाहते तो डाल्टनगंज में आसानी से छिपे रह सकते थे। परंतु मन में कुछ कर गुजरने की चाह उन्हें बैठने नहीं दे रही थी और वे बेचैनी महसूस कर रहे थे। एकाएक उनके मन में विदेश जाने का विचार आया और वे पुनः कानपुर आ गए, जहाँ गणेशशंकर विद्यार्थी ने उन्हें दो सौ रुपए देकर भोपाल रवाना कर दिया। यहाँ दो महीने ठहरकर वे फिर अपने एक मित्र के साथ दिल्ली चले आए। यहाँ अपने शहर के

एक सहपाठी से उनकी भेंट हो गई। अशफ़ाक़ उससे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। वह पठान दोस्त भी अशफ़ाक़उल्ला से बहुत उत्साह से मिला और उन्हें अपने डेरे पर ले गया। दोनों ने एक साथ खाना खाया। कुछ बातें भी हुईं और बाद को अशफ़ाक़ अपने निश्चित ठिकाने पर लौट आए। पर सबेरा होते-होते पुलिस ने आकर उन्हें गिरफ्तार कर लिया। पठान दोस्त ने इनाम के लालच में अशफ़ाक़ के बारे में पुलिस को सूचना दे दी थी। रियासतउल्ला ख़ाँ के अनुसार—"सैयद हबीब अहमद जो शाहजहाँपुर के रहनेवाले थे और अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ के सहपाठी और बहुत बड़े दोस्त थे, उन पर ब्रिटिश हुकूमत में एक मुकदमा चलाया गया और मुख़तलिफ़ सज़ाएँ दी गई थीं। सैयद हबीब अहमद के वालिद सैयद मुश्ताक़ अहमद वायसराय के दफ्तर में बड़े ओहदे पर तैनात थे। उनको हबीब अहमद के जरिए से मालूम हो गया कि अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ देहली में मौजूद हैं। उन्होंने अपने बेटे पर जोर डाला कि अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ को गिरफ्तार करा दो। इनके गिरफ्तार होने पर दो फायदे होंगे, एक तो तुम्हारी हिस्ट्रीशीट बंद हो जाएगी और तुमको इनाम भी इनकी गिरफ्तारी का मिलेगा और सरकारी बड़ा ओहदा भी मिल जाएगा। लेकिन सैयद हबीब अहमद इस बात पर राजी न हुए थे। सुना जाता है कि बाप के मजबूर करने पर इन्होंने अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ को एक दिन गिरफ्तार करा दिया।"

जो भी हो, पर कितना बड़ा विश्वासघात किया उस सहपाठी ने। तब जबकि दोनों एक ही शहर के निवासी थे और जाति व धर्म के नाम पर भी वे पृथक न थे।

अशफ़ाक़ के गिरफ़्तार होने पर दिल्ली से नूर अहमद बैरिस्टर ने तार द्वारा उनके भाई को दिल्ली आने की सूचना दी। रियासतउल्ला ख़ाँ को वहाँ पहुँचकर किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, इसका उन्होंने बहुत मार्मिक वर्णन किया—"बैरिस्टर साहब ने मौसूफ ने टेलीफोन से जेलर साहब से दरियाफ़्त किया कि अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ के बड़े भाई आए हैं, वह अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ से मिलना चाहते हैं। जेलर साहब ने कहा कि तीन बजे उनको भेज दीजिए, मुलाक़ात हो जाएगी। मैंने बैरिस्टर साहब से वायदा किया कि अगर यहाँ मुकदमा हुआ तो

आपको बैरिस्टर करूँगा और क़ल सुबह आपसे मिलूँगा। बैरिस्टर साहब ने फरमाया कि इत्मीनान रखिए, हम फौरन छुड़ा लेंगे, मुआमला ही क्या है। हमने ऐसे मामले हज़ारों छुड़ा दिए हैं। मैं जेल में गया। जेलर साहब मुसलमान थे। मुझसे फरमाया कि आप कौन हैं। मैंने कहा कि अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ का बड़ा भाई हूँ, आपने तीन बजे बुलाया था, हाज़िर हुआ हूँ। जेलर साहब ने कहा कि दरख़्वास्त लिखा लाओ। बड़ी दिक्क़त से दरख़्वास्त लिखाई, 4 आने लिखाई के दिए। दरख़्वास्त दी। दफ्तर में अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ बुलाए गए। वे आए, मैंने देखा कि सिर्फ़ एक साड़ी बाँधे हुए थे, जो बंगाली नमूने से बाँधी गई थी। एक कमीज़ काटन फ़ाख़तई मलमल की पहने हुए थे, कोट सब्ज रंग का पहने थे जो मोटा था, पैर में बूट जूता था और नंगे सर थे। हालाँकि कई कपड़े उनके थे लेकिन उनको उस वक्त तक न दिए गए थे, जिसकी वजह से सख़्त तक़लीफ़ थी। मुझसे गुफ़्तगू करते रहे और हँसते रहे। निहायत मुतमइन थे और वही मुस्कराहट फाँसी के तख़्ते पर भी थी। निस्फ (आधा) घंटा गुफ़्तगू रही। कहा कि वालिदा साहिबा से सलाम अर्ज़ कीजिएगा और यह अर्ज़ कीजिएगा कि आप कतई परेशान न हों, जो हुक्म ख़ुदा का होगा, वह होकर रहेगा। बगैर उसके हुक्म के जर्राह भी अपनी जगह से हिल नहीं सकता है। फिर परेशान होने से क्या फ़ायदा। मैंने बैरिस्टर साहब की गुफ़्तगू बयान की। उस पर वह बहुत हँसे और कहा कि पुलिस ने मुझे कोर्ट में ले जाकर पेश किया। वहाँ मिस्टर नूर अहमद साहब बैरिस्टर मौजूद थे। मौसूफ़ ने मुझसे फ़रमाया कि आप कौन हैं। मैंने अपना कुल हाल बताया। बैरिस्टर साहब ने फ़रमाया कि आपका कोई पैरोकार है या नहीं। मैंने जवाब दिया कि मेरी गिरफ़्तारी की किसी को खबर नहीं है। अगर आप तक़लीफ़ फरमाकर तार दें और मेरे भाई को मुत्तला फ़रमा दें तो वह आ जाएँगे। उस पर मिस्टर नूर साहब बैरिस्टर ने पता दरियाफ़्त किया। मैंने बड़े भाई मुहम्मद शफ़ीउल्ला ख़ाँ का पता बताया जो बैरिस्टर साहब ने नोट कर लिया। अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ ने यह भी कहा कि तार के दाम वह आकर आपको दे देंगे। अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ ने कहा कि बैरिस्टर साहब यहाँ पैरवी किस बात की करेंगे, जबकि मुकदमा लखनऊ होगा। मैंने कहा कि बैरिस्टर

साहब मुझसे फीस यक योम (दिन) की माँगते हैं। अशफ़ाक़उल्ला ने जवाब दिया कि फीस किस बात की। क्या तार देने की फीस, मैंने तार देने को कहा था। अगर उसकी फीस मुबलिग एक सौ माँगते हैं तो उन पर अल्ला रहम करे। बेशक तार के दाम देना उनको फर्ज़ है, दे दीजिए। अगर मुकदमा यहाँ होता तो उनको कर लिया जाता। पुलिस रिमांड लिया है। मजिस्ट्रेट वगैरह आएँगे और लखनऊ ले जाएँगे। हाँ, मेरी एक फोटो पुलिस ने लेकर अपने कब्जे में कर ली है। यह उससे शिनाख्त में मदद लेंगे। मेरी शिनाख्त की कार्यवाही क़ायदे से यहीं होनी चाहिए। मैंने अदालत से कहा भी कि मेरी फोटो मेरे सामने ज़ाया कर दी जाए लेकिन कोई सुनवाई नहीं हुई और मुझको तौलिया तक नहीं दी जिससे मैं अपना मुँह छिपा सकूँ। मैंने अशफ़ाक़उल्ला से कहा कि मैं यहाँ रहूँ। उन्होंने कहा कि बेकार है। आप मकान जाइए, फिर आइएगा क्योंकि अभी मुझे यहाँ रहना होगा। मैं रात की ट्रेन से शाहजहाँपुर रवाना होकर मकान आ गया। यहाँ आकर सब हाल बयान कर दिया। सुबह को एक कांस्टेबिल सी. आई. डी. सैयद फरज़ंद अली मेरे मकान पर आया। यह शाहजहाँपुर से लेकर लखनऊ तैनात किया गया था। मुझसे कहा कि आपको मिस्टर ऐनुद्दीन स्पेशल मजिस्ट्रेट और खान बहादुर तसद्दुक हुसैन डिप्टी सुपरिंटेंडेंट गवर्नमेंट इंडिया ने लखनऊ बुलाया है। मैं उनके हमराह लखनऊ गया। मिस्टर ऐनुद्दीन ने चाय वगैरह पिलाई क्योंकि इनसे देरीना ताल्लुक़ात थे, मेरे और मेरे बहनोई अब्दुल क़ादिर ख़ाँ साहब डिप्टी कलक्टर के और ख़ान बहादुर तसद्दुक हुसैन साहब भी थे। ये दोनों साहब मुझको मोटर पर सवार कराकर अपने हमराह मिस्टर हार्टन सुपरिंटेंडेंट सी. आई. डी. के बँगले पर ले गए। पेश्तर सैयद एनुद्दीन स्पेशल मजिस्ट्रेट और खान बहादुर तसद्दुक हुसैन साहब ने मिस्टर हार्टन से मुलाकात की। मिस्टर ऐनुद्दीन मिलकर चले गए और मुझसे कह गए कि यहाँ से वापसी पर मुझको मिलकर जाना। खान बहादुर तसद्दुक हुसैन मिस्टर हार्टन से मिलकर मुझको ले गए। मिस्टर हार्टन ने मुझसे कहा कि अगर आप लोगों का रवैया अच्छा न रहा तो हम आप लोगों पर मुकदमा चलाएँगे। मैंने साहब बहादुर से कहा कि रवैया कैसा रहे। क्या अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ के मुकदमे की पैरवी न की जाए।

आप क्या चाहते हैं। साहब बहादुर ने फरमाया कि जायज़ पैरवी की जाए, नाजायज़ नहीं। साहब बहादुर ने फ़रमाया कि अगर अशफ़ाक़-उल्ला इकबाल जुर्म कर लें तो उसको फायदा पहुँच सकता है। सरकारी गवाह नहीं हो सकता है क्योंकि बनारसीलाल हो चुका है, हम अदालत से सिफ़ारिश करेंगे। सज़ा में कमी हो जाएगी। मैं वहाँ से रुख़सत होकर मिस्टर ऐनुद्दीन के बँगले पर गया। उन्होंने असरार किया और खाना अपने हमराह खिलाया। मैं न खाता था। मुझसे कहा कि मैंने आपके बहनोई के यहाँ रहकर महीनों आपके हमराह खाना खाया है फिर आप क्यों इनकार करते हैं। मजबूर होकर बादिले नाख़्वास्ता (न चाहते हुए) उनके हमराह खाना खाया और मुझसे मिस्टर ऐनुद्दीन ने कहा कि अगर लल्लू ख़ाँ तुम अशफ़ाक़ से इकबाल करवा दो तो मैं कोशिश करूँगा कि सज़ा में कमी हो जाए (यह वाकिया जब का है जब अशफ़ाक़उल्ला दिल्ली जेल में थे और बनारसीलाल सरकारी गवाह हो चुका था।) ऐनुद्दीन साहब ने मुझसे कहा कि कल हम दिल्ली जा रहे हैं, आप भी दिल्ली आ जाइए। मैंने वायदा किया और मकान शाहजहाँपुर आ गया और दूसरे दिन दिल्ली रवाना हुआ। रास्ते से हापुड़ स्टेशन पर जिस ट्रेन में मैं था, मिस्टर ऐनुद्दीन और मिस्टर तसद्दुक साहब भी थे। दिल्ली पहुँचकर जेल गया लेकिन जेलर साहब ने मुलाक़ात न होने दी। मैं कोरोनेशन होटल आया। मिस्टर ऐनुद्दीन मजिस्ट्रेट और ख़ान बहादुर तसद्दुक हुसैन साहब से मिला। उनसे कहा कि मेरी मुलाक़ात न हुई, जेलर साहब ने इनकार कर दिया। दोनों ने कहा कि हमारे हमराह चलना हम मुलाक़ात करा देंगे। मिस्टर ऐनुद्दीन का ख़याल था कि शायद इस मुलाक़ात से यह फ़ायदा हो कि अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ इकबाल जुर्म कर देंगे और इसी बिना पर जेलर को बजरिए टेलिफोन मेरी मुलाक़ात से रोक दिया था कि मुझ पर असर पड़े कि हमने मुलाक़ात करा दी। मैं मिस्टर ऐनुद्दीन के ताँगे में उनके हमराह सवार होकर जेल गया। मजिस्ट्रेट के हुक्म से मेरी मुलाक़ात हो गई। मैंने मिस्टर हार्टन और मिस्टर तसद्दुक हुसैन और मिस्टर ऐनुद्दीन की कुल गुफ़्तगू अशफ़ाक़ उल्ला से बयान की। वह बहुत हँसे और कहा कि 'भैया (क्योंकि मुझको भैया कहा करते थे) मैं क्या जुर्म इकबाल करूँ जबकि मैं एक बात भी

नहीं जानता हूँ, तो क्या बयान करूँ । दूसरे मुझसे यह नहीं हो सकता है कि ख़्वामख़्वाह पुलिस के कहने से किसी नाकरदा गुनाह का, जिसका मैं नाम तक नहीं जानता हूँ, नाम ले दूँ । यह बखूबी जानता हूँ कि मुझे फाँसी देने की तजवीज़ है । अच्छा है अगर हुक्म खुदा यूँ ही है तो क्या चारा । मैं बिल्कुल तैयार हूँ मिसरा—सरे तसलीमे खम है, जो मिजाज़े यार में आए । अगर मेरे फाँसी देने से सी. आई. डी. की खुशी पूरी होती है तो अच्छा है, क्योंकि मैंने तो आज़ादिए हिंद का बीड़ा उठाया था, जो अभी ख़ुदा को मंज़ूर नहीं । मुल्क को फायदा पहुँचाने का ख़याल था । यह सी. आई. डी. और पुलिस सब पब्लिक हैं । बहरहाल मेरी मौत से इन लोगों को फ़ायदा हो जाएगा । हेड कांस्टेबिल, सब-इंसपेक्टर, इंसपेक्टर, डिप्टी-सुपरेंटेंडेंट, सुपरेंटेंडेंट हो जाएँगे । वह क्या कम फ़ायदा, मुल्क़ के लोगों को पहुँचेगा ।' मुझसे कहा कि भैया वालिदा साहिबा से दस्तबस्ता सलाम अर्ज़ कीजिएगा और अर्ज़ कीजिएगा कि आप सब्र से काम लें, सब्र को हाथ से न जाने दें । ..."

अशफ़ाक़ को इकबाली गवाह बनाने के अनेक प्रयास किए गए । मि. ऐनुद्दीन ने उन्हें यह समझाने की बहुत कोशिश की कि वह हिंदुओं का षड्यंत्र है और रामप्रसाद बिस्मिल हिंदू राज के लिए लड़ रहे हैं, तुम मुसलमान होकर झाँसे में कैसे आ गए ?

पहले तो अशफ़ाक़ उनकी बातें सुनते रहे । पर जब उन्होंने कुछ आगे बढ़कर क्रांतिकारियों के लिए कुछ उल्टा-सीधा कहा तो वे चुप न रह सके । बोले—"यह झूठ है कि पंडित रामप्रसाद हिंदू राज के लिए लड़ रहे हैं । पर यदि ऐसा है भी, तो हिंदू राज किसी भी तरह ब्रिटिश राज से अच्छा ही होगा ।"

ऐनुद्दीन क्या कहते । वह समझते थे कि अशफ़ाक़उल्ला को जाति और मज़हब के नाम पर आसानी से क्रांतिकारी चरित्र से डिगाया जा सकता है, पर यह उनकी भूल साबित हुई । धर्म और जाति से बहुत ऊपर उठ चुके अशफ़ाक़ को क्रांति के रास्ते पर अभी बहुत दूर तक जाना था । वे जब कभी ऐसा कुछ सुनते तो एक ही जवाब देते थे—"मैं अकेला मुस्लिम हूँ इसलिए मेरी जिम्मेवारी और भी भारी है । मैंने कुछ गड़बड़ की तो पूरी मुसलमान व पठान कौम पर धब्बा लग जाएगा । मुझे

बाइज़्ज़त मर मिटने दो।"

काकोरी का यह मुकदमा लखनऊ की अदालत में चल रहा था। इसके मजिस्ट्रेट थे मिस्टर ऐनुद्दीन। उन्होंने अभियुक्तों की शिनाख्त में बहुत धाँधली की। गिरफ्तार क्रांतिकारियों को शिनाख्त से पहले छिपाकर नहीं रखा गया और शिनाख्त के समय उनके साथ ऐसे आदमी खड़े किए गए जो उनसे किसी तरह मेल नहीं खाते थे। पुलिस के पास प्रायः सभी अभियुक्तों की तस्वीरें थीं और इस कारण वे शिनाख्त के समय खूब मनमानी कर सके। यद्यपि मुकदमा शुरू होने के पूर्व गिरफ्तार किए गए कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों को छोड़ दिया गया था, पर मुकदमे के दौरान किसी अभियुक्त को जमानत पर भी नहीं छोड़ा गया।

काकोरी का मुकदमा सेशन में चलाने के लिए एक सिनेमा हॉल भाड़े पर लिया गया। इसके लिए मोटी-मोटी रकम किराए के रूप में दी जाती थी। कुल 21 व्यक्तियों को सेशन सुपुर्द किया गया। एक-एक व्यक्ति पर कई-कई आरोप लगाए गए थे। कुछ आरोप तो बहुत गंभीर थे। क्रांतिकारियों को जेल में साधारण कैदियों के बराबर भी सुविधाएँ प्रदान नहीं की गई थीं और डकैती जैसे मामलों से संबद्ध लोगों को उनके ऊपर लगाए गए आरोपों की नकलें भी नहीं दी गईं। क्रांतिकारी अपनी इच्छानुसार वकीलों की सुविधा भी प्राप्त नहीं कर सकते थे। अदालत इच्छानुसार वकीलों की सुविधा भी प्राप्त नहीं कर सकते थे । अदालत लाए जाते समय उनके हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी रहती थीं। बाद को जब उन्हें शुरू किया गया। दामोदर स्वरूप सेठ इस अनशन में भयंकर रूप से बीमार पड़े। उस हालत में भी अधिकारीगण अदालत में उनकी हाजिरी के लिए बहुत जोर देते थे। जब क्रांतिकारियों ने एक स्वर से इसका तीव्र विरोध किया तो सरकार एक बोर्ड का गठन करने पर राजी हो गई जिसे सेठ जी की बीमारी के संबंध में अपनी राय देने का कार्य सौंपा गया। आश्चर्य की बात है कि बोर्ड द्वारा सरकार को दी गई रिपोर्ट में लिखा गया कि दामोदर स्वरूप सेठ अदालत में हाजिर होने के लिए उपयुक्त हैं, जबकि सेठ जी की बीमारी निरंतर भयंकर रूप लेती जा रही थी और वे

उठ-बैठ नहीं सकते थे। जब उन्हें किसी भी दवाई से लाभ नहीं हुआ तो उन्होंने वैद्यक इलाज की इच्छा जाहिर की, लेकिन किसी ने सुना नहीं। एक दिन अदालत ले जाने पर उनकी तबियत बिगड़ गई और वे बेहोश हो गए। क्रांतिकारियों ने यह देखकर पुनः अनशन शुरू कर दिया। विवश होकर सेठ जी को अब बरेली जेल में स्थानांतरित कर दिया गया। स्वास्थ्य ठीक न होने पर वहाँ से वे देहरादून जेल भेजे गए, पर उनकी हालत ज्यों-की-त्यों रही। अंत में सरकार ने एक हजार रुपए की जमानत और मुचलके पर उन्हें रिहा कर दिया।

इसके अतिरिक्त जेल-अधिकारियों का दुर्व्यवहार तथा खान-पान संबंधी शिकायतें वैसी ही बनी हुई थीं। क्रांतिकारियों ने इस तरह की सुविधाएँ प्रदान करने के लिए प्रदेश सरकार के होम मेंबर को एक आवेदन पत्र भेजा, जिसमें यह भी लिखा गया था कि जेल के कर्मचारी और अधिकारियों को अपने व्यवहार में परिवर्तन लाना चाहिए, पर वहाँ सुननेवाला कौन था। जेलों के इंसपेक्टर जनरल से भी शिकायत की गई कि उनकी कोठरियों में बरसात का पानी भरा रहता है। परंतु अधिकारियों ने तो जैसे उन्हें कष्ट देने का फैसला कर लिया था। अंत में इन्हीं माँगों को लेकर क्रांतिकारी अनशन के रास्ते पर चलने को विवश हुए। बनवारी लाल इस भूख हड़ताल में शामिल नहीं हुआ था। सरकार ने पहले तो बहुत प्रयत्न किया कि अनशनकारी क्रांतिकारियों का मामला दब जाए। उनसे किसी संबंधी का भी मिलना-जुलना बंद कर दिया गया और उन्हें जबरदस्ती खिलाने-पिलाने की कोशिश की गई, पर क्रांतिकारी काबू में नहीं आए। अनशन 20 दिन तक चलता रहा और सरकार द्वारा झुककर समझौता करने पर ही यह लड़ाई समाप्त हुई। जेल के भीतर काकोरी कैदियों की राजनैतिक रूप से यह बहुत बड़ी विजय थी। इस दौरान अदालत का काम भी बंद रहा।

सरकार की ओर से क्रांतिकारियों के लिए पंडित हरकरननाथ मिश्र को वकील नियुक्त किया गया था। गणेशशंकर विद्यार्थी और उनका 'प्रताप' प्रेस तो क्रांतिकारियों की सर्वाधिक मदद कर रहा था। क्रांतिकारियों की सहायता के लिए 'डिफेंस फंड' भी खोला गया, ताकि मुकदमे के लिए धन जुटाया जा सके। पहले यह खबर थी कि

जगतनारायण मुल्ला क्रांतिकारियों की ओर से वकील रहेंगे। मोतीलाल नेहरू ने स्वयं उनसे क्रांतिकारियों की पैरवी करने के लिए कहा था परंतु पता नहीं क्यों वे सरकार की ओर खिसक गए। उनसे जब ऐसा करने का कारण पूछा गया तो उनका उत्तर था कि सरकारी वकील रहकर वे क्रांतिकारियों की अधिक भलाई कर सकेंगे। उनका कहना था कि उन्होंने इस शर्त पर सरकारी वकील होना स्वीकार किया है कि जहाँ भी उन्हें मालूम होगा कि कोई व्यक्ति गलत तरीके से फँसाया गया है तो उन्हें इसका पूरा अधिकार होगा कि वे उस व्यक्ति के विरुद्ध मुकदमा वापस ले लें। परंतु आगे चलकर वे वैसा कुछ भी नहीं कर सके। वे प्रसिद्ध 'मैनपुरी षड्यंत्र केस' में भी क्रांतिकारियों के विरुद्ध वकील रह चुके थे। काकोरी के इस मुकदमे की पहली जाँच के लिए ही सरकार से उन्होंने दस हजार रुपया लिया था। आगे चलकर तो प्रतिदिन पाँच सौ रुपए उन्हें इस मुकदमे के लिए मिलते रहे और इस तरह उन्होंने कुल मिलाकर तीन लाख रुपए सरकार से वसूल किए। यद्यपि क्रांतिकारियों के वकील पं. हरकरननाथ मिश्र थे, परंतु लखनऊ के मोहनलाल सक्सेना, चद्रभानु गुप्त तथा कृपाशंकर हजेला आदि वकील बड़ी उदारता, तत्परता और लगन से इस मुकदमे में क्रांतिकारियों की पैरवी कर रहे थे। 'डिफेंस कमेटी' की ओर से कलकत्ता के बैरिस्टर मि. बी. के. चौधरी को भी पाँच सौ रुपए महीने पर इस मुकदमे में लाया गया था।

सेशन कोर्ट में स्पेशल जज ए. एच. डी. बी. हेमिल्टन थे। वे हिंदुस्तानियों से नफरत करने और न्याय का गला घोंटने के लिए मशहूर थे। क्रांतिकारी अपनी सफाई के लिए बहुत से गवाह पेश करना चाहते थे। परंतु अदालत के रवैये के कारण बाद में यह तय हुआ कि ऐसा करने से कोई लाभ नहीं। क्रांतिकारियों ने निवेदन भी किया कि मुकदमा किसी अन्य न्यायालय को भेज दिया जाए, पर वहाँ सुननेवाला था ही कौन।

काकोरी के इस मुकदमे में बंदी क्रांतिकारियों को भारी सुरक्षा-व्यवस्था के बीच पुलिस की लारियों में भरकर अदालत में लाया जाता था। क्रांतिकारी ज्यों ही अदालत जाने के लिए जेल से पुलिस के सुपुर्द किए जाते, वे जोरदार क्रांतिकारी नारों और 'वंदेमातरम्' का उद्घोष करते। जेल से अदालत तक का रास्ता करीब तीन मील लंबा था और

इस पूरे सफर में क्रांतिकारी झूम-झूमकर ऊंचे स्वर में राष्ट्रीय गान गाते थे। अदालत पहुँचकर जब क्रांतिकारी बेड़ियाँ खनकाते हुए पुलिस की लारियों से उतरते तो वह दृश्य देखने लायक होता। क्रांतिकारियों के जेल-जीवन और तत्कालीन वातावरण को ठीक से जानने के लिए 'काकोरी के शहीद' नामक पुस्तक के हम निम्न विवरण उद्धृत करते हैं—"देश भक्ति और मर-मिटने की तमन्ना ने अभियुक्तों का जेल-जीवन भी आमोदमय बना रखा था। अभियुक्तों का कचहरी आने-जाने का दृश्य दर्शनीय होता था। वह वीरबाँकुरे, राजहंस जैसे राजकुमार और तपस्वी जिस तरह मोटर से उतरते थे, मालूम होता था मूर्तिमान सुरेश देवताओं सहित इहलोक में लीला देखने हेतु आए हैं। पं. रामप्रसाद बिस्मिल के पीछे जब सब आत्माएँ 'वंदेमातरम्' गाती चलती थीं, उस दृश्य में एक अलौकिक छटा थी, जिसका वर्णन करने के लिए तुलसीदास जी के शब्दों में यही कहना पड़ता है कि 'गिरा अनयन, नयन बिनु बानी'। धन्य हैं वे आँखें जिन्होंने जी भरके उनकी मस्तानी अदा को निरखा। उनके मोटर से उतरते ही 'वंदेमातरम्', 'भारतमाता की जय', 'भारत प्रजातंत्र की जय' आदि के उद्घोष से कचहरी का वायुमंडल पवित्र हो जाता था। उनको देखने के लिए और मधुर गीत सुनने के लिए हजारों की भीड़ इकट्ठी होती थी। अधिकारियों के हृदय इस नाद को सुनकर दहल उठते थे। बेचारे क्या करते। एक दिन कहीं ताव में आकर एक कांस्टेबिल महाराज ने एक अभियुक्त के हाथ लगाया ही था कि स्वाभिमानी मस्तानी आँखों में खून उतर आया। उनसे न रहा गया और एक ने कांस्टेबिल के थप्पड़ मारा। फिर क्या था, दूसरी आफत खड़ी हुई। एक नया मुकदमा पुलिस ने जिलाधीश (सिटी मजिस्ट्रेट) के यहाँ दायर कर दिया। किंतु फिर आपस में समझौता हो गया।

"अदालत का दृश्य तो एक खास खूबसूरती रखता था। एक ओर पं. रामप्रसाद, श्री योगेश बाबू, श्री विष्णुशरण दुबलिश, श्री शचीन और श्री सुरेश बाबू अपनी स्वाभाविक स्वाभिमानता-मिश्रित गंभीरता से मुकदमे को सुनते थे, तो बगल में ही मन्मथ, राजकुमार, रामदुलारे, रामकिशन, प्रेमकिशन इत्यादि की चुहलबाजियों के मारे कोर्ट की नाक में दम था। उनके इस दृश्य को देखने के लिए अदालत के आसपास खुफिया

पुलिस के दूतों की भरमार होते हुए भी बहुत-से लोग इकट्ठे रहते थे। कचहरी में कोई प्रेस रिपोर्टर ठीक-ठाक नहीं दीख पड़ता था। यदि कभी कोई अच्छा नया रिपोर्टर आ भी गया, तो पुलिस के मारे बिचारे की आफत थी। हाँ, 'इंडियन डेली टेलीग्राफ' ने कुछ मनोयोग के साथ इस ओर काम किया। शाम को जब इन लोगों की मोटर-लारी निकलती, तो सड़क के दोनों ओर जनता काफी तादाद में उनका बेड़ी की झनकार में मस्ताना गाना सुनने को खड़ी रहती थी। उनके गानों का वहाँ इतना आदर हुआ कि एक पैसे से लेकर दो-दो आने में उनके एक-एक गाने की प्रति बिकती दीख पड़ती थी।

"कुछ शब्दों में उनकी जेल की दिनचर्या भी सुन लीजए। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि लखनऊ जेल के समस्त कैदी इन शहीदाने वतन की बड़ी श्रद्धा करते थे। जितने दिन तक ये लोग जेल में रहे, सब कैदी अपने-अपने दुख-दर्द भूल से गए थे। यहाँ पर ये लोग मस्ती में रहते थे, मगर कोई-कोई भावुक कैदी इनकी पवित्र आत्मा और भविष्य पर आठ-आठ आँसू रोता भी था। इन शहीदों के चरित्र-बल ने वहाँ पर ऐसा वातावरण पैदा कर दिया कि प्रत्येक कैदी को हार्दिक इच्छा अनुभव होने लगी कि वह इन्हें हर प्रकार यथाशक्ति आराम दे। इनकी इन जरूरतों को सब कैदी मुहय्या करने को कटिबद्ध रहते थे। श्री सुरेश तथा श्री राजकुमार के गाने पर तो समस्त कैदी क्या, जेल के क़र्मचारीगण तक मुग्ध थे। इन लोगों के साथ में ताश, हरमोनियम, इसराज इत्यादि भी थे। शाम को इनका कीर्तन जमता था, कभी कबड्डी खेलते थे, तो कभी कोई सदस्य अपनी नई शैतानी सबके सम्मुख पेश करता था। बड़े आनंद के दिन थे। केवल हँसी-खेल ही नहीं, सुरेश बाबू की मंडली में बड़े गंभीर विषयों पर मनन और वाद-विवाद भी हुआ करता था। अध्यात्मवाद, वस्तुवाद और आदर्शवाद—सभी की समय-समय पर विवेचना हो जाती थी। शचीन धर्मवाद और अध्यात्म के समन्वय का प्रतिपादन करना चाहते थे, तो पंडित जी देश के लिए सबसे यह कहलाकर मानते थे कि 'अब दीन है तो यह है, ईमान है तो यह है।' कभी-कभी इन विवादों में प्रांतीयता भी आ जाती थी किंतु पंडित जी इन सब बातों पर तुरंत पानी फेर देते थे। इन

लोगों में कुछ शाकाहारी थे, तो कुछ मछली-भातवाले भी। खान-पान में कभी-कभी कुछ बंगालीपन आ ही जाता था, किंतु ज्यादती कभी नहीं हुई। पर उसमें भी लोग आनंद ही अनुभव करते थे। रविवार के दिन सब अभियुक्त नियमपूर्वक रहते थे। यह सबके पूजा का दिन था। आज सब लोग विशेष प्रसन्न दीख पड़ते थे। श्री राजकुमार और रामदुलारे गाना बड़ा अपूर्व जानते थे। उनका गाना शुरू होता तो समा बँध जाता था। खाने के वक्त आज सबसे अच्छा खाना बनता। सुरेश बाबू इस काम के लिए आगे आते। एक बार रविवार के दिन उन्होंने 22 (बाईस) भाँति की तरकारियाँ बनाईं और सबने मिलकर आनंदपूर्वक भोजन किया। करीब-करीब सभी व्यक्तियों ने जेलजीवन में अपना कार्यक्षेत्र स्वयं ही बना लिया था। अब यदि इन पर कभी कोई ज्यादती होती तो सुरेश तथा शचीन बाबू अपनी स्वाभावोचित धैर्यशीलता से सबको समझाया करते। पंडित जी तथा श्री दुवलिश तो अपने स्वाभिमान का सदैव ख्याल रखते। नवयुवक लोग अपनी चुहलबाजियों के आवेग में कभी-कभी मारपीट भी कर बैठते थे। किंतु इतना होते हुए भी सब में अनुशासन था, सब अपने बड़ों की आज्ञा शिरोधार्य करते थे। श्री प्रणवेश चटर्जी का जेल-जीवन बिल्कुल निराला था। हर वक्त उनकी आँखें अलसायी हुई रहती थीं। चित्त प्रतिपल संताप से भरा रहता था। मालूम होता था, आप पर बहुत बड़ा दुर्व्यवहार और ज्यादती की गई है। आप बड़े भावुक हैं और सदैव अप्रसन्न रहते थे। ठाकुर रोशन सिंह सदैव निर्लिप्त और निर्विकार रहे। उनके रहन-सहन से यह सबको भासित होता था कि आप हमेशा कुछ सोचा करते थे। अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ का जीवन हर दिशा में आदर्श था । आप बड़े रसिक बख्शी पहले बहुत अच्छे कवि थे। श्री अशफ़ाक़उल्ला और श्री शचीन बख्शी पहले बहुत दिन तक फ़रार रह चुके थे। अतः जब यह दोनों सज्जन दिल्ली और भागलपुर में क्रमशः पकड़े गए तो इन्हें पुलिस ने बड़ा कष्ट दिया और इनके साथ कई प्रकार की ज्यादतियाँ भी की गईं। श्री अशफ़ाक़उल्ला बड़ी ही मस्त तबियत के आदमी थे। सभी इन्हें चाहते थे। कभी-कभी ये शेरों में ऐनुद्दीन साहब स्पेशल मजिस्ट्रेट को फटकार दिया करते थे। कहते हैं ऐनुद्दीन साहब का बचपन में अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ के परिवार से

संबंध था। इसलिए कभी-कभी इस बात का जिक्र करते हुए श्री अशफ़ाक़ उन्हें बनाते बहुत थे। बनवारीलाल ने इन दिनों अपना बयान वापस ले लिया था। अत: वह बड़ा अनुतप्त और दुखी रहता था। श्री भूपेंद्र सान्याल कुछ कमजोर अवश्य हो गए थे। कचहरी में एक बार श्री पार्वती देवी, भाई परमानंद और मौ. शौकत अली भी मुकदमा देखने गए। सबसे हँसोड़ श्री राजेंद्र लाहिड़ी थे। यहाँ तक कि वे बड़े से बड़े कर्मचारी के सम्मुख भी मीठी चुटकियाँ लेने से बाज नहीं आते थे। एक बार जब श्री दामोदर स्वरूप सेठ जी स्ट्रेचर पर अदालत लाए गए, तो अभियुक्तों को बड़ा भारी मानसिक आघात पहुँचा। कटघरे के अंदर से ही एक ओर पंडित रामप्रसाद जी शेर की तरह हिंदी में दहाड़-दहाड़कर हेमिल्टन साहब का सत्कार कर रहे थे, दूसरी ओर से दुबलिश जी अंग्रेजी में ब्रिटिश गवर्नमेंट के न्याय विधान की धज्जियाँ उड़ा रहे थे और बीच-बीच में बड़े उत्तेजनापूर्ण शब्दों में उस दिन की अदालत की कार्यवाही बंद कर देने को उद्यत थे। हारकर उस दिन की अदालत उठी। फिर दुबारा सेठ जी उस अवस्था में अदालत में नहीं लाए गए। अभियुक्तों की विजय हुई जेल के अंदर अभियुक्तों ने प्राय: सभी त्योहार बड़े उत्साह से मनाए। सरस्वती पूजा, बसंत पंचमी और होली··· अभियुक्तों के ये तीनों उत्सव खास तौर से बहुत अच्छे हुए। बसंत के दिन जब सबने मिलकर यह गाना गाया तो सबके हृदय में देशभक्ति की हिलोरें उठने लगीं—

मेरा रँग दे बसंती चोला
इसी रंग में रँग के शिवा ने माँ का बंधन खोला।
यही रंग हल्दीघाटी में खुलकर के था खेला।
नव बसंत में भारत के हित वीरों का यह मेला।
मेरा रँग दे बसंती चोला

''इनके त्योहारों में कितनी अपूर्वता थी। बसंत और होली का मूल्य और महत्त्व ये ही अनुभव कर सके होंगे। आनंद का दिवस था। नौकरशाही के हाथों हमारा भविष्य अंधकारमय तो निश्चत है ही। बहुतों का इस होली और बसंत से अंतिम मिलन था, जिसकी कल्पना वे

स्वयं भी करने लगे थे । अतः यह रागरंग स्वाभाविक ही था । इस रागरंग ने सबमें एक अद्‌भुत कवित्व-शक्ति पैदा कर दी थी । उनकी रची हुई सभी कविताओं का जिक्र करना यहाँ पर असंभव प्रतीत होता है, कारण वे सभी रचनाएँ जेल के बाहर तक न पहुँच सकीं । हाँ, कुछ गाने जो अभियुक्त कचहरी जाते समय गाया करते थे, इस प्रकार हैं—

सरफरोशी की तमन्ना[1] अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल[2] में है ।
रहबरे राहे मुहब्बत[3] रह न जाना राह में,
लज्जते सहरानवर्दी[4] दूरिए मंजिल[5] में है ।
वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आसमां,
हम अभी से क्या बताएँ क्या हमारे दिल में है ।
अब न अगले वलवले[6] हैं और न अरमानों[7] की भीड़,
एक मिट जाने की हसरत[8] अब दिले बिस्मिल[9] में है ।
आज मक्तल[10] में यह कातिल कह रहा है बार-बार,
क्या तमन्नाये शहादत[11] भी किसी के दिल में है ।
ऐ शहीदे मुल्को-मिल्लत[12] मैं तेरे ऊपर निसार,[13]
अब तेरी हिम्मत की चर्चा गैर की महफिल में है ।[14]"

मन्मथनाथ गुप्त और दामोदरस्वरूप सेठ ने उस समय देश को 'भारत प्रजातंत्र की जय' का नारा दिया था । यह नारा इस बात का प्रतीक था कि भारत के क्रांतिकारी देश की आजादी के बाद प्रजातंत्र की स्थापना के प्रति कितने सजग थे, जबकि कांग्रेस उस समय तक 'पूर्ण स्वाधीनता' के प्रस्ताव तक भी न पहुँची थी । यह भी सही है कि दल के नेता रामप्रसाद बिस्मिल और शचींद्रनाथ सान्याल, जो अपनी पूरी शक्ति से इस मुकदमे

---

1. मर कटाने की आकांक्षा । 2. कातिल के हाथों में । 3. प्रेम की राह के सूत्रधार । 4. जगह-जगह मारे फिरना । 5. लक्ष्य की दूरी । 6. जोश-हिम्मत । 7. आकांक्षाओं, कामनाओं । 8. प्रबल इच्छा । 9. अधमरा, जख़्मी । 10. फाँसीगृह । 11. धर्म या देश पर बलिदान । 12. देश और समाज । 13. न्योछावर । 14. दुश्मनों में ।

की पैरवी पर ध्यान दे रहे थे, इस नारे को पसंद नहीं करते थे। उनका मानना था कि इससे मुकदमे पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। परंतु इस नारे के समर्थकों में राजेंद्रनाथ लाहिड़ी और दूसरे कुछ नौजवान क्रांतिकारी थे, जिनके कारण आमतौर पर लारियों से उतरते समय भीड़ को लक्ष्य करके ये नारे लगाए जाते रहे। लेकिन यह नारा भारतीय जनता के बीच उस तरह जनप्रिय नहीं हो सका, जिस तरह आगे चलकर भगतसिंह के 'इन्कलाब जिंदाबाद' को लोकप्रियता मिली। इसके पीछे कारण यह भी था कि 'नौजवान सभा' ने भगतसिंह के नारे को उठा लिया था, जबकि उस समय कांग्रेस के अलावा कोई ऐसा खुला मंच नहीं था जो 'भारतीय प्रजातंत्र की जय' के इस नारे को जनता के बीच ले जाता और उसे लोकप्रिय बनाने में मदद करता। और कांग्रेस थी कि इस नारे को पसंद नहीं करती थी। जो भी हो, इस नारे से भारतीय क्रांतिकारियों की प्रगतिशीलता और उनके लक्ष्य का पता तो लगता ही है।

जेल में रहकर क्रांतिकारियों को अध्ययन और मनन का खूब मौका मिला। ठाकुर रोशनसिंह ने वहीं रहकर बंगला सीखी। शचींद्रनाथ सान्याल और राजेंद्रनाथ लाहिड़ी तो बहुत अध्ययनशील व्यक्ति थे। राजेंद्र बाबू पहले कुछ धर्म विरोधी थे। यहाँ तक कि वे करीब-करीब अनीश्वरवादी हो चुके थे, परंतु सान्याल जी का झुकाव अध्यात्म की ओर होने के कारण उन्होंने राजेंद्र बाबू को भी धर्म की ओर खींच लिया। मन्मथनाथ गुप्त ईश्वरवाद और अनीश्वरवाद के बीच झूल रहे थे परंतु उस समय वे यह मानते थे कि करीब-करीब अनीश्वरवाद तक पहुँच चुके राजेंद्र बाबू का धर्म की ओर वापस चले जाना पीछे लौटना था। दल के नेता पंडित रामप्रसाद बिस्मिल आर्यसमाजी विचारों के थे और अशफ़ाक़उल्ला ख़ुदा और कुरान में आस्था रखते हुए भी बहुत प्रगतिशील विचारों के थे। परंतु 1927 में काकोरी के क्रांतिकारियों की फाँसी के बाद दल का नया और निखरा हुआ रूप ही सामने आया। ईश्वर और धर्म की बातों के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं था और भगत सिंह के नेतृत्व में दल ने वैज्ञानिक समाजवाद को अपना लक्ष्य बनाया।

यद्यपि दिसंबर, 1925 में कानपुर में सत्यभक्त प्रथम कम्युनिस्ट कांफ्रेंस का आयोजन कर चुके थे, पर कम्युनिज़्म का उन दिनों प्रचार

नहीं हुआ था और न ही उन विचारों का प्रवेश क्रांतिकारी दल के लोगों के बीच हो पाया था, जैसा कि आगे चलकर भगतसिंह के युग में हुआ। मार्क्सवादी साहित्य तब भारत में आसानी से उपलब्ध भी नहीं था। देश में कम्युनिज़्म का वह उदय काल था और उस समय तक हिंदी में रमाशंकर अवस्थी की 'बोलशेविक मजदूर', सोमदत्त विद्यालंकार की 'रूस का पुनर्जन्म', विश्वंभरनाथ जिज्जा की 'रूस में युगांतर', प्राणनाथ विद्यालंकार की 'रूस का पंचायती राज' आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं। सत्यभक्त जी 1923 में नागपुर से 'श्रमजीवी लेखमाला' के अंतर्गत 'श्रमजीवियों का संदेश' नामक ट्रेक्ट प्रकाशित कर चुके थे, जिसका सरकारी रिपोर्ट में भी उल्लेख मिलता है। यहाँ यह भी बता दें कि काकोरी के मुकदमे की कार्यवाही देखने के लिए सत्यभक्त जी एक दिन अदालत भी गए थे और वे बंदी क्रांतिकारियों से मिलना भी चाहते थे, पर पुलिस ने उन्हें वैसा करने नहीं दिया। यह बात सत्यभक्त जी ने ही अपनी मृत्यु से कुछ पूर्व मथुरा में एक भेंट में मुझे बताई थी। सत्यभक्त जी 1924 में 'बोलशेविज़्म क्या है' शीर्षक ट्रेक्ट कलकत्ता में बालकृष्ण मेहता के सहयोग से छपवा चुके थे। इस तरह वे भारत में कम्युनिज़्म के आरंभिक प्रचारकों और लेखकों के रूप में हमारे सामने आते हैं और 1925 में कानपुर में प्रथम कम्युनिस्ट कांफ्रेंस के आयोजक होने के नाते उन्हें 'इतिहास पुरुष' कहा जा सकता है। यद्यपि यह सही है कि आगे चलकर कम्युनिज़्म के बड़े लीडरों में उनकी शुमार नहीं हो सकी। पर इसके पीछे यह भी कारण था कि उन्होंने कभी अपने को आगे लाने या विज्ञापित करने का प्रयत्न नहीं किया। वे बुनियादी काम करने के पक्षधर थे और मैंने स्वयं देखा कि जीवन की आखिरी साँस तक कम्युनिज़्म के प्रति उनकी आस्था में कोई कमी नहीं आई और वे प्रचारक बनकर ही कार्य करते रहे। रूस के इतिहासकारों ने भी उनके इस महत्त्व को स्वीकार किया है।

काकोरी के कैदियों में शचींद्रनाथ सान्याल इससे पूर्व फरारी जीवन में ही सत्यभक्त जी से मिल चुके थे। सान्याल जी धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे पर उस समय उन्होंने सत्यभक्त जी से मिलकर कम्युनिज़्म पर काफी चर्चा की थी। 'विचार विनिमय' पुस्तक में सान्याल जी ने

लिखा है–''उस समय (1922) में कम्युनिज़्म से परिचित होने के लिए मुझमें और मेरे साथियों के बीच तीव्र आकांक्षा उत्पन्न हुई थी । उस समय मैं ऐसे किसी व्यक्ति से परिचित न था जो इस सिद्धांत के बारे में कुछ भी समझता हो। ऐसे अवसर पर देहली में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन (1923) के मौके पर मेरे साथ एक सज्जन का परिचय हुआ, जिनसे सर्वप्रथम मुझे पता लगा कि कम्युनिज़्म की मर्मकथा क्या है । यह एक मुसलमान सज्जन थे।

''उस दिन से मैं कम्युनिज़्म के साहित्य से भली-भाँति परिचित होने के लिए व्यग्र हो उठा । इसके पश्चात कानपुर में आकर एक और सज्जन से मेरा परिचय हुआ । इनकी सहायता से कम्युनिज़्म के बारे में बहुत से प्रमाणित ग्रंथ पढ़ने का अवसर मिला । इस सबका परिणाम यह हुआ कि उत्तर भारत के जिस क्रांतिकारी दल का संगठन मैंने किया, उसमें कम्युनिज़्म के बहुत से मूल सिद्धांतों को ग्रहण कर लिया गया।

''इस प्रकार मैं कम्युनिज़्म के सिद्धांत से परिचित हुआ । कानपुर में श्री सत्यभक्त की सहायता से जो पुस्तकें पढ़ने को मिलीं, उन्हीं से मैं कम्युनिज़्म को अच्छी तरह समझ पाया ।''

('विचार विनिमय', पृ. 2-3)

इसी संबंध में श्री सान्याल ने अपनी पुस्तक 'बंदी जीवन' में भी स्पष्ट रूप से लिखा है–''सत्यभक्त जी कम्युनिज़्म के सिद्धांत के आधार पर संयुक्त प्रांत में एक दल संगठित करना चाहते थे। कम्युनिज़्म का एक मूल सिद्धांत है कि विप्लव के मार्ग से ही सफलता प्राप्त की जा सकती है, अन्यथा नहीं । हम लोग यथार्थ में विप्लवी थे । सत्यभक्त जी विप्लव के मार्ग पर चलना नहीं चाहते थे । पर उनके पास कम्युनिज़्म विषय की कुछ अच्छी-अच्छी पुस्तकें थीं। उन्हें मैंने पढ़ डाला। सत्यभक्त जी से मेरा बहुत वार्तालाप हुआ, तर्क-वितर्क हुए एवं भौतिकवाद और आत्मवाद, इतिहास की भौतिक व्याख्या, श्रेणी-संघर्ष आदि विषयों को लेकर दिन-दिन भर आलोचनाएँ हुईं।''

('बंदी जीवन', पृ. 318)

सान्याल जी कम्युनिज़्म के बारे में जानकारी प्राप्त करके भी अध्यात्म के रास्ते से नहीं हट सके । यही कारण था कि क्रांतिकारी दल के

भीतर कम्युनिज़्म के सिद्धांतों का उस समय प्रचार नहीं हो पाया । हाँ, इस तथ्य को सान्याल जी ने स्वयं स्वीकार किया है कि कम्युनिज़्म के मूल सिद्धांतों को उनके दल ने ग्रहण कर लिया था । पर इतिहास लेखकों ने इस वास्तविकता की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और वे सान्याल जी की उस विशेषता को कहीं रेखांकित कर सके कि विरोधी विचारधारा की भी अच्छी बातों को वे किस उदारता से अपना लेते थे । तब दल के लोग जिस साहित्य का अध्ययन करते थे, यहाँ वह बता देना भी उचित ही होगा । उन्होंने स्वामी विवेकानंद, रामतीर्थ, अरविंद, तिलक, बाबू भगवानदास, रवींद्र, शरत्, डार्विन, हर्बर्ट स्पेन्सर, लार्ड ब्राइस, गिबन, रूसो, शेक्सपियर, तुलसी, कालिदास, विद्यापति आदि की रचनाओं को चुना था । क्रांतिकारी दल की उस समय कोई स्पष्ट विचारधारा नहीं थी । वहाँ विभिन्न विचारों और मान्यताओं के लोग थे । जेल में उनके बीच गंभीर विषयों पर चिंतन और बहस होती थी । अध्यात्मवाद, वस्तुवाद और आदर्शवाद की विवेचना की जाती थी, परंतु देशभक्ति की भावना वहाँ सर्वोच्च थी और स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व दे देना वे गौरव की बात समझते थे ।

अशफ़ाक़उल्ला जब गिरफ्तार हुए तो काकोरी के मुख्य मुकदमे की कार्यवाही काफी आगे बढ़ चुकी थी । वे दिल्ली से अलीगढ़ होकर लखनऊ लाए गए । गवाहों को पहले ही स्टेशनों पर उनकी पहचान करा दी गई और सुबह लखनऊ जेल में कैदियों के बीच उनकी शिनाख्त करा दी गई । उन पर पूरक मुकदमे के रूप में पृथक केस चलाया गया । उनकी गिरफ्तारी के तीन-चार माह बाद ही भागलपुर में शचींद्रनाथ बख्शी को गिरफ्तार करके केंद्रीय कारागार में लाया गया । अशफ़ाक़उल्ला का मुकदमा उस समय तक सेशन सुपुर्द हो चुका था । पहले यह तय हुआ कि बख्शी जी पर भी पृथक से केस चलाया जाए । पर बाद में अशफ़ाक़उल्ला का मुकदमा रोककर बख्शी जी पर निचली अदालत की कार्यवाही पूरी कर ली गई और दोनों पर एक साथ सेशन का मुकदमा चला ।

इससे पहले अशफ़ाक़ केंद्रीय कारागार के योरोपियन वार्ड में रखे गए और बख्शी जी अलग बैरक की एक कोठरी में । वहाँ से अशफ़ाक़ के

साथ संपर्क करने में बख्शी जी को कई दिन लग गए। मुकदमा जिस दिन सेशन पहुँचा, तो पहले दिन ही अदालत ले जाए जाते समय जेल के फाटक पर दोनों क्रांतिकारियों की भेंट हो गई। उस मुलाकात का मार्मिक वर्णन शचींद्रनाथ बख्शी ने जो मुझे सुनाया, वह उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है—"जेल से अदालत को ले जाने से पहले हमारे पैर में बेड़ी डाल दी जाती थी। जब मैं आफिस पहुँचा और मुझे बेड़ी डाली जाने लगी, उस समय मैंने देखा कि अशफ़ाक़ बेड़ी पहने आफिस जेलर के पास खड़े बातें कर रहे हैं। उस समय जेल का सारा स्टाफ—सब-जेलर, आफिस जेलर, डिप्टी जेलर, बाबू लोग वहाँ इकट्ठे हो गए थे। जब मुझे बेड़ी डाली जा चुकी तो आफिस जेलर ने मुझे बुलाया—'बख्शी जी, जरा इधर सुनिए।'

"मैं पास पहुँचा तो अशफ़ाक़उल्ला ने बड़े तपाक से कहा—'अच्छा, आप बख्शी जी हैं।'

"मैंने आफिस जेलर से पूछा—'आप कौन हैं।'

"आफिस जेलर ने परिचय दिया—'यही तो अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ हैं।'

"अब हम दोनों ने बड़े जोश से हाथ मिलाया और एक दूसरे के गले मिले। उस समय चारों ओर से जोरदार तालियाँ बजीं। सब कहने लगे कि हम यही 'भरत-मिलाप' देखने के लिए तो इकट्ठे हुए थे।

"असल बात यह थी कि हम लोगों के बीच पहले से ही तय हो चुका था कि हम यह बात किसी के सामने जाहिर नहीं होने देंगे कि हम एक दूसरे को पहले से जानते हैं, क्योंकि इससे हमारे मुकदमे पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता था और सरकार को यह साबित करने का मौका मिलता कि हम दोनों एक साथ काम करते थे।"

उसी दिन से बख्शी जी अशफ़ाक़उल्ला के साथ योरोपियन वार्ड में भेज दिए गए और फैसले की तारीख तक दोनों एक साथ रहे। अब दोनों साथ-साथ अदालत जाते और अच्छा समय बीतता। दोनों यह जानते थे कि उनके सामने फाँसी के फंदे हैं, पर जीवन से भरपूर उनकी दिनचर्या में इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

लखनऊ ज़िला जेल और केंद्रीय कारागार की इमारतें एक-दूसरे से

मिली हुई थीं । अशफ़ाक़उल्ला व बख्शी जी केंद्रीय जेल में थे और मुख्य मुकदमे के दूसरे क्रांतिकारी जिला जेल में । कई बार वार्डरों तथा वकीलों के आने-जाने से दोनों ओर सूचनाओं का आदान-प्रदान आसानी से हो जाता था । एक दिन पता लगा कि जिला जेल में दल के नेता पंडित रामप्रसाद बिस्मिल धार्मिक कट्टरता दिखा रहे हैं । बख्शी जी ने अशफ़ाक़उल्ला से कहा—"यह अनुचित है ।" बख्शी जी के ही शब्दों में—"हमें मालूम हुआ कि पं. रामप्रसाद हवालात में बहुत धार्मिक कट्टरता दिखाते थे तथा धर्म-प्रचार भी करते थे । मैंने जब इसका विरोध किया तब अशफ़ाक़उल्ला ने यह बताया कि शायद पं. रामप्रसाद ने यह आडंबर रखकर बचाव की कोई चाल खेली हो और वे भी खूब नियम के साथ नमाज वगैरह पढ़ने लगे । रोजे भी रखना शुरू कर दिया । नियमित रूप से नमाज वगैरह पढ़ने पर भी वे कट्टर कतई नहीं थे । धर्म को वे कभी रास्ते का रोड़ा बनते नहीं देख सकते थे । बल्कि ऐसा होने पर वे धर्म को रोड़े की तरह ठुकरा देना ठीक समझते थे । वे मुल्क की आजादी के सवाल को मजहबी मतभेदों से कहीं ऊँची चीज मानते थे। पहले वे देश को स्वतंत्र देखना चाहते थे। इसी से अशफ़ाक़उल्ला की धर्म संबंधी उदारता का तथा उनके हृदय में हिलोरें लेती हुई देशभक्ति का परिचय मिल जाता है ।

"मैं था कट्टर नास्तिक तथा भगवान और अल्लाह दोनों को गाली देनेवाला, लेकिन बहुत दिनों तक साथ रहने पर भी हम दोनों में कभी इस संबंध में या धर्म के किसी भी विषय पर बहस नहीं हुई, जैसी कि श्री शचींद्रनाथ सान्याल और श्री गोविंदचरण कार की बहस धर्म और ईश्वर के पक्ष में दूसरे कम उम्र के अभियुक्तों से हुआ करती थी । इस विषय में अशफ़ाक़उल्ला का कहना था कि मैं किसी ताकत को बहुत ऊँचा मानता हूँ यानी यह समझता हूँ कि हमारे और दुनिया के ऊपर कोई और है । तुम इसे नहीं मानते, जिस दिन मेरा भी इस बात से विश्वास उठ जाएगा, उस दिन से मैं भी ईश्वर को मानना छोड़ दूँगा । यह तो एकदम व्यक्तिगत विश्वास की बात है ।"

धर्म और ईश्वर में विश्वास रखनेवाले अशफ़ाक़उल्ला की यह धार्मिक उदारता हमारे लिए एक उदाहरण है, विशेष तौर पर उन लोगों

को इससे सीख लेनी चाहिए जो धर्म और मजहब के नाम पर लोगों के बीच नफरत के बीज बो रहे हैं। बख्शी जी अशफ़ाक़ की इस धार्मिक उदारता की चर्चा करते नहीं थकते थे। वे जब कभी शाहजहाँपुर आते तो अशफ़ाक़ के घर पर ही ठहरते। उस परिवार से तो जैसे उनका खून का रिश्ता बन गया था। 22 नवंबर, 1984 को सुल्तानपुर में जब बख्शी जी का निधन हुआ, तो मुझे व रामकृष्ण खत्री जी को देर से उसकी सूचना मिल सकी। पता नहीं, कैसे और कितनी बीमारी को झेलते हुए वे इस दुनिया से चले गए। उनके अंतिम दिनों में उनसे मिलकर उनकी आखिरी ख्वाहिश जान सका होता तो कितना अच्छा होता। शायद बख्शी दादा मुझसे यही कहते—"मुझे अशफ़ाक़ के घर की वह ड्योढ़ी दिखा दो... वह वीरान कब्रिस्तान, जिसमें मेरा सखा, मेरा अभिन्न अशफ़ाक़ गहरी नींद में सोया पड़ा है।"

बिस्मिल मुकदमे की पैरवी में बहुत दिलचस्पी ले रहे थे। उन्हें विश्वास था कि वे कानून और सरकारी गवाहों द्वारा पेश की गई कहानियों का जाल काटने में सफल होंगे। पर उनके प्रयत्न व्यर्थ जा रहे थे और वे यह समझने लगे थे कि सरकार उन्हें फाँसी पर लटकाना चाहती है। काकोरी के इस मुकदमे में इतने अधिक क्रांतिकारी जेल के भीतर थे कि बाहर गिने-चुने लोग रह गए थे और वे किसी तरह भूमिगत रहकर अपना काम चला रहे थे। इसका अर्थ यह नहीं था कि बाहर पार्टी निर्जीव गई थी। चंद्रशेखर आजाद और दूसरे कुछ साथी इसे अपनी शक्ति के बल पर जिंदा रखे हुए थे। बाहर के कुछ लोगों से गुप्त रूप से संपर्क करके बिस्मिल और उनके कुछ साथियों ने जेल से निकलने की योजना बनाई। बिस्मिल चाहते थे कि फाँसी पर लटकने से अच्छा है कि वे सरकार से दो-दो हाथ करते हुए मारे जाएँ। पहले यह तय किया गया कि क्रांतिकारी जब अदालत ले जाए जा रहे हों, तब हमला करके उन्हें छुड़ा लिया जाए। पर उस समय लखनऊ की सड़कों पर कड़ी निगरानी थी। इस 'ऐक्शन' में खतरा भी बहुत था और इस बात की संभावना थी कि एक-दो क्रांतिकारी साथियों को छुड़ाने के लिए चार-छह लोग पकड़े या

मारे जाएँ।

एक योजना यह भी बनी कि दीवार फाँद कर जेल से क्रांतिकारी निकल आएँ। ऐसा करने के लिए क्लोरल मँगाकर पहरेदारों में मिठाई खिलाने और सींखचे काटने का काम करना था। पर अदालत में एक बार क्लोरल लेते समय पुलिस ने पकड़ लिया और इस तरह यह योजना भी कार्यान्वित न हो सकी। जेल के भीतर बिस्मिल पर जब निगरानी भी बढ़ा दी गई और इस कारण बाहर के लोगों को उन्हें छुड़ाने का विचार त्यागना पड़ा। बिस्मिल से संपर्क और सूचनाओं का आदान-प्रदान इस समय बहुत मुश्किल हो रहा था। बिस्मल भी किसी माध्यम से बाहर दल के लोगों तक कोई खबर नहीं पहुँचा पा रहे थे। बहुत प्रयत्न करने पर विजयकुमार सिन्हा को बिस्मिल के हाथ की लिखी हुई एक ग़ज़ल प्राप्त हुई, जिसमें बिस्मिल ने अपने उलाहने को अभिव्यक्ति दी थी। जेल-अधिकारियों ने यह समझकर कि वह कोई साधारण प्रेम कविता है, उसे पास कर दिया था। बिस्मिल का कहना साफ था कि कुछ करना है तो जल्दी करो। बाद में रस्से से लटकी मेरी लाश को तुमने छुड़ा भी लिया, तो वह तुम्हारे किस काम आएगी। ग़ज़ल इस प्रकार थी—

मिट गया जब मिटनेवाला फिर सलाम आया तो क्या,
दिल की बरबादी के बाद उनका पयाम आया तो क्या।

मिट गई जब सब उमीदें मिट गए सारे ख्याल,
उस घड़ी गर नामावर लेकर पयाम आया तो क्या।

ऐ दिले नादान मिट जा अब तो कूए-यार में,
फिर मेरी नाकामियों के बाद काम आया तो क्या।

काश अपनी ज़िंदगी में हम वो मंज़र देखते,
बरसरेतुरबत कोई महशरख़राम आया तो क्या।

आखिरी शब दीद के क़ाबिल थी बिस्मिल की तड़प,
सुबहेदम कोई अगर बालाए-बाम आया तो क्या।

भगतसिंह, विजयकुमार सिन्हा और पार्टी के दूसरे लोग बिस्मिल की

इस ग़ज़ल को पढ़कर अपनी विवशता पर रो पड़े। भगतसिंह को इससे गहरा आघात लगा, पर उन्होंने जल्दी ही अपने को संयत कर लिया।

बिस्मिल की तरह अशफ़ाक़उल्ला भी 'वारसी' और 'हसरत' उपनाम से कविता लिखते थे। उन्होंने हवालात में अनेक रचनाएँ लिखीं, जिनमें कुछ 'हमदम' नामक उर्दू अखबार में प्रकाशित भी हुईं। उनकी कुछ प्रसिद्ध ग़ज़लें, नज़्में और चंद अशआर हम यहाँ दे रहे हैं—

बहार आई हुई शोरिश जुनूने फ़ितना सामाँ[1] की,
इलाही ख़ैर करना तू मेरे ज़ेबो ग़रीबाँ[2] की

सही जज़बाते हुर्रियत[3] कहीं मेटे से मिटते हैं,
अबस[4] हैं धमकियाँ दारोरसन[5] की और ज़िंदाँ[6] की।

वह गुलशन जो कभी आज़ाद था गुज़रे ज़माने में,
मैं शाखे खुश्क हूँ हाँ हाँ उसी उजड़े गुलिस्ताँ की।

नहीं तुमसे शिकायत हम सफ़ीराने चमन[7] मुझको,
मेरी तक़दीर ही में था क़फ़स[8] और क़ैद ज़िंदाँ की।

करो ज़ब्ते मुहब्बत[9] ग़र तुम्हें दावाए-उलफ़त[10] है,
खामोशी साफ़ बतलाती है ये तस्वीरे-जानाँ[11] की।

यूँ ही लिक्खा था किस्मत में चमन पैराये-आलम[12] ने,
कि फ़स्ले-गुल में गुलशन छूटकर है क़ैद ज़िंदाँ की।

---

1. बसंत के आने पर, मस्ती के साधनों की अधिकता का शोरगुल। 2. कुरते की जेब और गला जिसमें बटन लगाई जाती है। 3. आजादी के उद्गार। 4. फिजूल। 5. सूली और फाँसी का तख्ता। 6. जेल। 7. चमन के साथी, सारे पक्षीक्षण। 8. पिंजड़ा। 9. प्रेमभार सहन करना। 10. प्रेमी होने का दावेदार। 11. माशूक की तस्वीर। 12. ईश्वर।

जमीं दुश्मन जमाँ दुश्मन जो अपने थे पराए हैं,
सुनोगे दास्ताँ क्या तुम मेरे हाले-परीशाँ की ।

ये झगड़े और बखेड़े मेटकर आपस में मिल जाओ,
ये तफ़रीक़े अगस[1] है, तुम में हिंदू और मुसलमाँ की ।

सभी सामाने-इश्रत[2] थे मजे से अपनी कटती थी,
वतन के इश्क़ ने मुझको हवा खिलवाई ज़िंदाँ[3] की ।

ख़ुदा वाक़िफ़ है जैसी भी गुज़रती है गुज़रती है,
सुनोगे दास्ताँ क्या यार तुम बीमारे-हिज़्राँ[4] की ।

मिसाले-क़ैस[5] दीवाना किसी लैला की खातिर में,
महीनों ठोकरें खाया किया कोहो बियाबाँ[6] की ।

बहमदल्ला[7] चमक उट्ठा सितारा मेरी किस्मत का,
कि तकलीदे-हकीकी की अता शाहे-शहीदाँ की[8] ।

इधर ख़ौफ़े-ख़िज़ाँ है आशियाँ का डर उधर दिल को,
हमें यक़साँ है तफ़रीहे-चमन[9] क़ैद और ज़िंदा की ।

ज़िबहसाई[10] दरे-हज़रत की हसरत अपना ईमाँ है,
मुबारक हज़रते वाइज़ को ख्वाहिश बाग़े-रिज़्वाँ[11] की ।

वह रंग अब कहाँ है नसरीनो नसतरन[12] में,
उजड़ा पड़ा हुआ है क्या ख़ाक़ है वतन में ।

---

1. भेदभाव बेकार हैं । 2. सुख के सामान । 3. कैदखाना । 4. वियोग का रोगी । 5. मजनूँ का दूसरा नाम । 6. जंगलो-पहाड़ों । 7. बलिहारी ईश्वर की । 8. सच्चा अनुकरण हजरत इमाम हुसैन का । 9. बाग की सैर । 10. ईश्वर के समक्ष माथा टेकना । 11. उपदेशक की जन्नत का दरोगा होने की कामना । 12. फूलों के नाम ।

कुछ आरज़ू नहीं है, है आरज़ू तो यह है,
रख दे कोई ज़रा-सी ख़ाके-वतन क़फ़न में ।

ऐ पुख़्ताकारे[1] उलफ़त हुशियारे डिग न जाना,
मेराज़े[2] आशिकाँ है इस दार[3] और रसन[4] में ।

था नारए-अनलहक़[5] और दावाए मुहब्बत,
रखा हुआ था और क्या मन्सूरो कोहकर्न[6] में ।

मौत और ज़िंदगी है दुनिया का एक तमाशा,
फ़रमान कृष्ण का था अर्जुन को बीच रन में ।

जिसने हिला दिया है दुनिया को एक पल में,
अफ़सोस क्यों नहीं है वह रूह अब वतन में ।

ऐ खायनीने[7] मिल्लत ये ख़ूब याद रखना,
हैं बोस और कन्हाई अब भी बहुत वतन में ।

सैयाद ज़ुल्म पेश आया है जब से हसरत,
है बुलबुले क़फ़स में जागो[8] जगन[9] चमन में ।

सुनाएँ ग़म की किसे कहानी हमें तो अपने सता रहे हैं,
हमेशा सुबहो-शाम[10] दिल पर सितम के खंज़र चला रहे हैं ।

---

1. सफल प्रेमी । 2. प्यार की बुलंदी । 3. सूली । 4. फाँसी की रस्सी । 5. मन्सूर एक सूफी संत थे, जिन्होंने अपने आप में ईश्वर के दर्शन किए थे और इसीलिए अनलहक का नारा लगाया था । अतः उसे फाँसी दी गई । उसी फाँसी के लिए दारोरसन शब्द आते हैं । 6. फरहाद (शीरीं का आशिक) । 7. खयानत करनेवाला । 8. कौवा । 9. चील । 10. प्रातः और संध्या ।

न कोई इंग्लिश न कोई जर्मन न कोई रशियन न कोई तुर्की,
मिटानेवाले हैं अपने हिंदी जो आज हमको मिटा रहे हैं ।

कहाँ गया कोहेनूर हीरा किधर गई हाय मेरी दौलत,
वह सबका सब लूट करके उल्टा हमीं को डाकू बता रहे हैं ।

जिसे फ़ना वह समझ रहे हैं बका[1] का है राज़ उसी में मुजमिर,[2]
नहीं मिटाए से मिट सकेंगे वह लाख हमको मिटा रहे हैं ।

जो है हुकूमत वह मुद्दई है जो अपने भाई हैं हैं वह दुश्मन,
गजब में जान अपनी आ गई है क़ज़ा के पहलू में जा रहे हैं ।

चलो-चलो यारो रिंग थियेटर दिखाएँ तुमको वहाँ पे लिबरल,
जो चंद टुकड़ों पे सीमोजर[3] के नया तमाशा दिखा रहे हैं ।

खमोश हसरत खमोश हसरत अगर है जज़्बा[4] वतन का दिल में,
सज़ा को पहुँचेंगे अपनी बेशक जो आज हमको सता रहे हैं ।

खुदाया देख ले हम कैसे ख़्वार हो के चले,
तिरे ही नाम पे प्यारे निसार हो के चले ।
ख़राबो ख़स्ताओ ज़ारो नज़ार[5] हो के चले,
वतन में आह ग़रीबुद्दियार[6] हो के चले ।
निशानाये सितमे सदहज़ार हो के चले ।

ज़नाब माफ़ हो ये गुफ़्तगूए-बेतासीर ।
मुकद्दरात में चलती नहीं कोई तदबीर ।

---

1. शेष रहना । 2. छिपा हुआ । 3. चाँदी-सोने के टुकड़े । 4. भाव । 5. रोते हुए, परेशान हाल । 6. बेवतन ।

हमारी तरह से हैं और भी कई दिलगीर,[1]
फिराये देखिए हमको कहाँ-कहाँ तक़दीर ।
असीरे गर्दिशे लैलो निहार[2] हो के चले ।

तिरे ही वास्ते आलम में हो गए बदनाम,
तिरे सिवा नहीं रखते किसी से हम कुछ काम ।
तिरे ही नाम को जपते हैं हम तो सुबहो शाम,
वतन न दे हमें तर्के-वफ़ा[3] का तू इलज़ाम ।
कि आबरू पे तेरी हम निसार[4] होके चले ।

वह असीरे-दामे-बला[5] हूँ मैं जिसे साँस तक भी न आ सके ।
वही क़तीले-ख़ंज़रे-ज़ुल्म[6] हूँ जो न आँख अपनी फिरा सके ।।

मिरा हिंदूकुश हुआ हिंदूकुश ये हिमालिया है दिवालिया ।
मेरी गंगा-जमना उतर गई हैं बस इतनी हैं कि नहा सके ।।

मिरे बच्चे भीख हैं माँगते, उन्हें टुकड़ा रोटी का कौन दे ।
जहाँ जावें कहें परे-परे, कोई पास तक न बिठा सके ।।

मिरे कोहेनूर को क्या हुआ; उसे टुकड़े-टुकड़े ही कर दिया ।
उसे खाक में ही मिला दिया, नहीं ऐसा कोई कि ला सके ।।*

---

1. रंजीदा । 2. रात-दिन । 3. वफा को छोड़ देना । 4. कुर्बान, भेंट । 5. मुसीबत के जाल में फँसा हुआ । 6. अत्याचार के खड्ग से आहत ।

* रिंग थियेटर में मुकदमा हुआ था । यह व्यंग्य सरकारी वकील पं. जगतनारायण मुल्ला पर है जो 500 रुपए रोज पाते थे । यह ग़ज़ल ऐनुद्दीन मजिस्ट्रेट के न्यायालय में अशफ़ाक़उल्ला ने गाई थी ।

नहीं अपनी हालत है बताने के क़ाबिल ।
नहीं माज़रा ये सुनाने के क़ाबिल ।।
ज़ुबाँ तक नहीं हम हिलाने के क़ाबिल ।
बुज़ुर्गों का किस मुँह से हम राग गाएँ ।।
जब इकगुन भी उनका न अपने में पाएँ ।
किसी को नहीं मुँह दिखाने के क़ाबिल ।।
चमन में ख़िज़ाँ अपने इठला रही है,
क़यामत ग़ुलो-ग़ुंचों पर आ रही है ।
ज़मीं चर्ख़ बनकर सितम ढा रही है,
सुनो रोके बुलबुल ये क्या गा रही है ।
कभी ख़ार था इसका बागे-अदन को,
नज़र हाय किसकी लगी इस चमन को ।।
कभी यों न उजड़ा था मसकन किसी का,
न यों जल गया होगा ख़िरमन किसी का ।
हरदयाल आता है यूरोप से न पाल आता है,
दिल में रह-रह के बस इतना ख़याल आता है ।
भरने जाते हैं कहीं उम्र के पैमाने को,
हिंद को छोड़ते हैं रंज़ोअलम खाने को ।

उरूज़े[1]-क़ामयाबी पर कभी हिंदोस्ताँ होगा,
रिहा सैयाद[2] के हाथों से अपना आशियाँ[3] होगा ।

चखाएँगे मज़ा बरबादी-ए-गुलशन का ग़ुलची[4] को,
बहार आ जाएगी उस दिन जब अपना बाग़वाँ[5] होगा ।

ज़ुदा मत हो मिरे पहलू से ए दर्दे-वतन हरगिज़,
न जाने बादे मुरदन[6] मैं कहाँ, और तू कहाँ होगा ।

---

1. उन्नति का शिविर । 2. चिड़ीमार । 3. घोंसला, अपना घर । 4. फूल तोड़ने वाला, दमनकारी । 5. माली, रक्षक-पोषक । 6. मृत्यु के बाद ।

वतन[1] की आबरू का पास[2] देखें कौन करता है,
सुना है आज मक़्तल[3] में हमारा इम्तहाँ होगा ।

ये आये-दिन की छेड़ अच्छी नहीं ऐ ख़ंज़रे-क़ातिल,
बता कब फैसला उनके हमारे दरमियाँ होगा ।

शहीदों के मज़ारों पर लगेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मरनेवालों का यही बाक़ी निशाँ होगा ।

कभी वो दिन भी आएगा जब अपना राज़ देखेंगे,
जब अपनी ही ज़मीं होगी, जब अपना आसमाँ होगा ।

ज़माना बना यूँ न दुश्मन किसी का,
ख़िज़ाँ[4] से लुटा यूँ न गुलशन[5] किसी का ।
रहा एक बुलबुल भी जिसमें न बाक़ी,
फ़साना जो उजड़े चमन[6] का सुनाती ।
हमें ख़ाक़ में वो मिलाये हुए हैं,
ज़माने के रौंदे सताये हुए हैं ।
तनज़्ज़ुल[7] के चक्कर में आए हुए हैं,
कि अपने ही घर में पराए हुए हैं ।
ये सब कुछ सही है, मगर जान तन में,
शरारा[8] है ये अपने ठंडे अगन[9] में ।।

नहीं ग़रचे अब वे हरारत दिलों में,
वही ख़ून बाक़ी है लेकिन रगों में ।
जुनूँ ग़रचे बाकी नहीं अब सरों में,
मगर आबोगिल[10] है वही हड्डियों में ।

---

1. देश । 2. मान्यता, गौरव । 3. वधशाला । 4. पतझड़, उजाड़ । 5. आवासगृह । 6. उजड़े बाग की कहानी । 7. पतन । 8. स्फुलिंग । 9. अग्नि । 10. पानी-मिट्टी (तत्व) ।

लटे भी तो हाथी लटेगा कहाँ तक,
समंदर घटे सो घटेगा कहाँ तक।
नहीं ग़रचे रौनक़ वो अपने चमन में,
न वो रंग-बू है ग़ुले-यासमन[1] में।
है मुद्दत से गो अपना सूरज गहन में,
मगर ख़ूँ तो है वो ही अपने बदन में।
बहुत फ़र्क़ है मुर्दा, मुर्दा-दिलों में।
तफ़ावत[2] है बेजान और बिस्मिलों[3] में।।
वह स्थान गंगोंतरी का पवित्तर,
पिथौरा की लाट और उदयपुर के पत्थर।
हिमालय की वे चोटियाँ सर उठाकर—
इक आवाज़ से कह रही हैं बराबर—
कि, जब तक हैं हम इनको मरने न देंगे।
फ़ना का इन्हें जाम भरने न देंगे।।

ख़्याल[4] आता है जिस दम दिल में चुभता है सिनाँ[5] होकर,
रहे क्यों क़ब्ज़ा-ए-अग़ियार में हिंदोस्ताँ होकर।

शहीदाने-वतन का ख़ून एक दिन रंग लाएगा,
चमन में फूट निकलेगा यह बरग़े-अर्ग़वाँ[6] होकर।

फ़क़त दारोरसन ही कामयाबी का ज़रीया है,
मकासिद तक यह पहुँचाएगी हमको निर्दबाँ[7] होकर।

नहीं वाक़िफ़ थे मादर और पिदर इस अमरे-शुदनी[8] से,
कि आफ़त में पड़ेंगे उनके बच्चे नौजवाँ होकर।

---

1. चमेली का फूल। 2. अंतर। 3. घायल। 4. विचार। 5. बरछी। 6. लाल। 7. सीढ़ी। 8. होनी, होनेवाली बात।

सता ले ऐ फ़लक़ मुझको जहाँ तक तेरा जी चाहे,
सितम परवर सितम झेलूँगा शेरे नेसताँ[1] होकर ।

करूँ मैं इनकिलाबे दहर का शिक़वा मआज़ अल्लाह[2],
है तुफ़[3] मुझे पर डरूँ ग़र जेल से मैं नौजवाँ होकर ।

दहलता है कलेजा दुश्मनों का देखकर 'हसरत',
चला करते हो जब बेड़ी पहनकर शादमाँ[4] होकर ।

कुछ अशआर

आनी थी हमको मौत सो आई वतन से दूर,
अब देखना ये है कि ये मिट्टी कहाँ की है ।

□

बहुत ही जल्द टूटेंगी ग़ुलामी की ये ज़ंज़ीरें,
किसी दिन देखना आज़ाद ये हिंदोस्ताँ होगा ।

ज़िंदगी बादेफ़ना तुझको मिलेगी हसरत,
तेरा ज़ीना तिरे मरने की बदौलत होगा ।

□

वतन हमेशा रहे शादकाम और आज़ाद,
हमारा क्या है अगर हम रहे रहे न रहे ।

□

बुज़दिलों को ही सदा मौत से डरते देखा,
गो कि सौ बार उन्हें रोज़ ही मरते देखा ।

वीर को मौत से हमने नहीं डरते देखा,
तख़्तये मौत पे भी खेल ही करते देखा ।

□

---

1. जंगल का शेर । 2. ईश्वर बचाए । 3. खेद । 4. प्रसन्न ।

मौत इक़ रोज़ जब आनी है तो डरना क्या है,
हम सदा खेल ही समझा किए मरना क्या है ।

☐

तंग आकर हम भी उनके ज़ुल्म के बेदाद से,
चल दिए सूए-अदम ज़िंदाने फ़ैज़ाबाद से ।

जबकि गैरों से उन्हें इक दम की भी फ़ुरसत नहीं,
फिर वह क्यों मिलने लगे अब हसरते-नाशाद से ।

☐

बाइसे नाज़ जो थे अब वह फ़साने न रहे,
जिन तरानों में मज़ा था वह तराने न रहे ।

घर छुटा बार छुटा एहले वतन छूट गए,
माँ छुटी बाप छुटा भाई-बहन छूट गए ।

☐

अपना यह अहद सदा से था कि मर जाएँगे,
नाम माता तेरे उश्शाक़[1] में कर जाएँगे ।

☐

कौन वाक़िफ़ था कि यूँ सर पे बला आएगी,
बैठे बिठलाए हुकूमत यह ग़ज़ब ढायेगी ।

☐

फ़ना[2] है सबके लिए हम पे कुछ नहीं मौकूफ़[3],
बक़ा[4] है एक फ़क़त जाते किब्रिया[5] के लिए ।

☐

तनहाई गुरबत[6] से मायूस[7] न हो 'हसरत',
कब तक न ख़बर लेंगे याराने-वतन[8] तेरी ।

☐

वह जुर्मे-आरज़ू[9] पै जिस क़दर चाहें सज़ा दे लें,
मुझे ख़ुद ख़्वाहिशे-ताज़ीर[10] है मुलज़िम हूँ इकरारी

---

1. प्रेम, इश्क । 2. मृत्यु । 3. निर्भर । 4. शेष । 5. ईश्वर । 6. एकांत की गरीबी । 7. उदासी, मजबूरी । 8. देशवासी, मित्रगण । 9. आकांक्षा का अपराध । 10. जुर्म से इनकार ।

उनकी एक कविता यहाँ और दी जा रही है*—

न कोई इंगलिश न कोई जर्मन,
न कोई रशियन न कोई तुर्की।
मिटानेवाले हैं अपने हिंदी,
जो आज हमको मिटा रहे हैं।
जिसे फ़ना वह समझ रहे हैं,
बका का है राज़ इसी में मुज़मिर,
नहीं मिटाने से मिट सकेंगे,
वो लाख हमको मिटा रहे हैं।
खमोश 'हसरत' खमोश 'हसरत',
अगर है ज़ज़्बा वतन का दिल में,
सज़ा को पहुँचेंगे अपनी बेशक़,
जो आज हमको सता रहे हैं।

उनकी एक हिंदी कविता इस प्रकार थी—

हे मातृभूमि तेरी सेवा किया करूँगा।
फाँसी मिले मुझे या हो जन्म क़ैद मेरी,
बेड़ी बजा-बजाकर तेरा भजन करूँगा।

सरकारी वकील पर उन्होंने एक शेर कहा था—

चलो-चलो यारो, रिंग थियेटर दिखाएँ तुमको···
जो चंद टुकड़ों पर सीमोज़र के नया तामाशा दिखा रहे हैं।

अठारह महीने मुकदमा चलने के पश्चात् फैसले का दिन नजदीक आ गया। वे सभी क्रांतिकारी जिन पर हत्या व डकैती के अभियोग थे, फाँसी के लिए तैयार थे। बिस्मिल पर तीन व मन्मथनाथ गुप्त पर दो डकैतियों के अभियोग थे और मुकुंदीलाल, ठाकुर रोशनसिंह, राजेंद्रनाथ लाहिड़ी,

* एक ग़ज़ल के ही कुछ शेरों को एक खास रंग देने के लिए इस रूप में पेश कर दिया गया है।

राजकुमार सिन्हा, गोविंदचरण कार, रामकृष्ण खत्री पर एक-एक डकैती का। सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र तथा सम्राट के विरुद्ध युद्ध की घोषणा को साबित करने के लिए मुकदमे में पर्याप्त सबूत मौजूद थे।

सजा सुनाए जाने से पहले क्रांतिकारियों के बीच इस बात का अनुमान लगाया जाता कि किसे कितनी सजा मिलेगी। रामप्रसाद बिस्मिल पर एक से अधिक डकैतियों का अभियोग था और ऐसे अवसरों पर उनकी सरदार की भूमिका से सभी सुपरिचित थे। सरकारी तौर पर भी वे षड्यंत्र के नेता माने गए थे और काकोरी का यह मुकदमा भी 'सम्राट बनाम रामप्रसाद' के नाम से चलाया गया था। इसलिए सभी यह अंदाज लगा रहे थे कि बिस्मिल को फाँसी की सजा अवश्य मिलेगी। फाँसी की दूसरी सजा मन्मथनाथ गुप्त या राजेंद्र लाहिड़ी को मिलने का अनुमान किया जा रहा था। मन्मथनाथ जी से राजेंद्र लाहिड़ी उम्र में बड़े थे और दक्षिणेश्वर बमवाले मुकदमे में उनकी सजा अपील में दस साल से घटाकर पाँच साल रह गई थी, इसलिए फाँसी की सजा उन्हीं को दी जाने का अंदाज लगाया जा रहा था। राजेंद्र बाबू स्वयं मन्मथनाथ से कहते—"हम दोनों की गति एक ही होगी।" वे बंगला में कहा करते—"आप और हम, दोनों झूलने जा रहे हैं।"

मार्च में जब मुकदमा अंतिम स्थिति में पहुँचा, तो अभियुक्तों के बयानों की बारी आई। ये बयान मामूली और तथ्यहीन थे, क्योंकि इन्हें वकीलों द्वारा तैयार किया गया था और उनका उद्देश्य अपनी सफाई को मजबूत करना था। काकोरी के इस मामले में क्रांतिकारियों ने अदालत को मंच के रूप में इस्तेमाल नहीं किया, जहाँ से वे अपने लक्ष्य और विचारधारा के संबंध में कुछ कहते और वह जनता के बीच जाता-फैलता। जज ने प्रत्येक अभियुक्त के लिए एक प्रश्नावली पहले से तैयार कर ली थी और क्रांतिकारियों ने उसी के अनुसार अपने बयान दे दिए थे। 'इंडियन डेली टेलीग्राफ' तथा 'अवध' अखबार ने उन बयानों को प्रकाशित भी किया था।

सरकारी वकील ने बहस करते समय क्रांतिकारियों को समाज के शत्रु के रूप में प्रस्तुत करने का पूरा प्रयास किया और ब्रिटिश साम्राज्य की उदारता और भलाई की तस्वीर खींचने में उन्होंने अपनी पूरी शक्ति

लगा दी । बयान और बहस के बाद जज ने फैसला लिखने के लिए पंद्रह दिन का समय लिया । क्रांतिकारियों के लिए यह पंद्रह दिन छुट्टी के रूप में रहे । सभी खुश थे और खेल आदि में अपना समय बिता रहे थे । उन्हें सजाओं का भी ध्यान था और सभी क्रांतिकारी यह जानते थे कि दल के नेता को फाँसी की सजा मिलेगी । यह समझकर सभी लोग बिस्मिल के प्रति अपनी सद्भावना और आदर प्रदर्शित कर रहे थे। कुछ दूसरे क्रांतिकारी जो लंबी सजाएँ पाने का अनुमान कर रहे थे, वे अपने को जेल-जीवन के लिए मानसिक रूप से तैयार कर रहे थे । उनके सामने यह भी समस्या थी कि सरकार सजा के बाद विशेष व्यवहार करना बंद कर देगी और वैसी स्थिति में उन्हें क्या करना होगा, क्योंकि तब क्रांतिकारी विभिन्न जेलों में बँटे होंगे । इसलिए एक सभा बुलाई गई और इस मुद्दे पर क्रांतिकारियों के बीच विस्तार से चर्चा की गई । तय यह किया गया कि यदि विशेष व्यवहार से इनकार किया जाता है तो वे अनशन का रास्ता अपनाएँगे । सभी से कह दिया गया कि वैसी स्थिति में वह अपना नेतृत्व स्वयं करेगा । कौन कहाँ होगा और किसे फाँसी होगी, इसका किसी को कुछ पता न था⋯

समय अपनी गति से चल रहा था ।

1927 के 6 अप्रैल का वह दिन भी नजदीक आ गया, जबकि क्रांतिकारियों के भाग्य का फैसला होनेवाला था। यह दिन भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में विशेष महत्त्व प्राप्त करने जा रहा था—इतिहास, जिसे शहीदों ने अपने खून से लिख दिया⋯

5 अप्रैल, 1927 को जिला जेल लखनऊ के ग्यारह नंबर बैरक में रात्रि-भोजन के बाद एक दिलचस्प बैठक हुई । क्रांतिकारियों ने अपनी एक अदालत बनाई और 'जज' महोदय से उनके जुर्मों का हवाला देते हुए फैसला सुनाने को कहा गया ।

पहला नाम पंडित रामप्रसाद बिस्मिल का आया । जज ने बताया कि इन्हें इसलिए प्राणदंड दिया गया कि वह भारत देश को दयालु ब्रिटिश साम्राज्य से छीनना चाहते हैं। दूसरा नाम शचींद्रनाथ सान्याल का पुकारा गया । सान्याल जी ने आरोप स्वीकार करते हुए इस आधार पर उदार रुख की प्रार्थना की कि उनकी कच्ची गृहस्थी है । जज ने उन्हें

काला पानी का दंड दिया। इस प्रकार कई लोगों के नामों के उपरांत रोशनसिंह का नाम पुकारा गया। जज ने निर्णय सुनाते हुए कहा—"चूँकि आप बमरौली डकैती में सम्मिलित नहीं थे लेकिन उस स्थान की जानकारी आपने सबको दी थी, इस कारण आपको पाँच साल की सख्त सजा दी जाती है।"

रोशनसिंह चिल्लाए—"ओ जज के बच्चे, फैसला सुनाने की तमीज भी है! मैं तो कोदों बेचकर आया हूँ न, जो मुझे पाँच साल की सजा सुना रहा है। पंडित (रामप्रसाद बिस्मिल) को फाँसी और मुझे सजा! बेवकूफ!"

सब एक-दूसरे का मुँह देखने लगे, तो रोशनसिंह को थोड़ा और छेड़ने के अभिप्राय से किसी ने पीछे से कहा—"जज साहब से निवेदन है कि अदालत की मानहानि के आरोप में ठाकुर रोशनसिंह को पंद्रह दिनों की सजा और दी जाए।"

लोग हँस पड़े। रोशनसिंह गुस्से में उठे और अपने बिस्तर पर जाकर लेट गए। अदालत का नाटक खत्म कर दिया गया, तो हँसी से सभी क्रांतिकारी लोट-पोट हो गए। सभी रोशनसिंह से माफी माँगने लगे। वे उम्र में सबसे बड़े जो थे।

उस दिन आजादी के उन दीवानों की मस्ती जो भी देखता, वही दाँतों तले उँगली दबाता—आदमी होकर मौत से नहीं डरते, मिट्टी के बने हैं ये लोग।

6 अप्रैल को क्रांतिकारी बहुत सबेरे जग गए थे। उस दिन दस बजे ही उन्हें अदालत पहुँचना था। वे रोज की तरह कसरत और स्नान कर रहे थे और खूब खिलकर हँस रहे थे। जो कोई उन्हें देखता, वही उनकी जिंदादिली की प्रशंसा करता।

खाना तैयार हो चुका था और सबने रोज की तरह ही खाना खाया। एकाएक बिस्मिल के मस्तिष्क में यह विचार आया कि आज सब एक साथ खाना खाएँ। जेलर रायबहादुर चंपालाल के यहाँ से एक बहुत बड़ी थाली मँगाई गई और उसके चारों ओर सभी क्रांतिकारी बैठ गए। कुछ

खड़े भी रहे । सभी ने अनुष्ठानिक तरीके से थाली में से एक-एक दो-दो कौर खाए और हँसते हुए उठ खड़े हुए । क्रांति-पथ के उन मुसाफिरों के बीच यह सामूहिक भोज था, जिनका रास्ता अब पृथक् होनेवाला था। वे, जो कभी एक उद्देश्य और लक्ष्य की ओर सिर पर कफन बाँधकर आगे बढ़े थे । आज उन्हीं में कुछ से जीने का अधिकार छीनने का निर्णय हो सकता था और कितनों को साम्राज्यवाद की जेलों की अँधेरी बदबूदार कोठरियों में ढकेला जा सकता था ।

…और इसीलिए आज उन्होंने साफ और अच्छे कपड़े पहने थे । ऐसे अवसरों पर सुंदर लिबास धारण करने की उनकी पुरानी परंपरा जो थी । हल्दीघाटी के राजपूत इसी प्रकार मरने के लिए अपनी सबसे अच्छी पोशाकें पहनकर गए थे और राजपूत रमणियाँ तो जौहर-व्रत करने से पहले सोलह शृंगार किया करती थीं ।

ठाकुर रोशनसिंह ने आगे बढ़कर इत्र की एक शीशी निकाली और सभी के वस्त्रों पर थोड़ा-थोड़ा लगाया । वे स्वयं आज बहुत बढ़िया वस्त्र पहने हुए थे ।

इसके बाद बेड़ियाँ पहनाई जाने लगीं । एकाएक उसी समय राजकुमार सिन्हा दौड़ते हुए आए और उन्होंने मन्मथनाथ गुप्त को आलिंगन में ले लिया । पूछने पर पता लगा कि हेमिल्टन या किसी अन्य अधिकारी के निर्देश पर फाँसी की तीन कोठरियाँ साफ की जा रही हैं । राजकुमार को अनुमान था कि फाँसी पानेवाला तीसरा व्यक्ति मन्मथ जी के अलावा और कौन हो सकता है । पर यह खबर अनुमान ही थी । कोई जज या अन्य अधिकारी जेलवालों को इस तरह की खबर पहले से क्यों दे देता ।

क्रांतिकारी रोज की भाँति पहरे के बीच अदालत रवाना हुए । लारी के चलते ही क्रांतिकारी गीतों का वही समाँ बँध गया, पर आज मन की हिलोरों ने गानों में अजीब-सी लय भर दी थी । काजी नज़रूल इस्लाम का वह गाना भी गाया गया, जिसकी पंक्तियाँ इस प्रकार थीं… ''शाकल परा छल मोदेर ऐ शाकल परा छल ।'' अर्थात् हमारा बेड़ियाँ पहनना छल मात्र है, यह बेड़ियाँ छल मात्र हैं । आगे भीड़ देखी तो 'बंदेमातरम्' और 'भारतीय प्रजातंत्र की जय' के नारों का गगनभेदी उद्घोष किया

गया। आज ये नारे वातावरण में विचित्र ध्वनि और उमंग पैदा कर रहे थे। जिन कानों ने भी उस ध्वनि को सुना, वे धन्य हो गए।

क्रांतिकारियों की दृष्टि रास्ते में एक ऐसी गाड़ी पर पड़ी जिसमें सामान लदा हुआ था। बिस्तरों और बक्सों पर लगे लेबिल को पढ़कर आश्चर्य का ठिकाना न रहा। लेबिलों पर जज साहब का नाम लिखा हुआ था। स्पष्ट था कि वे फैसला सुनाने के बाद कहीं दूर जा रहे हैं। कितना आतंक था ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर इन मुट्ठी-भर क्रांतिकारियों का, जो उम्र और शक्ति में भी बहुत ज्यादा न थे और जिन्हें फाँसी और लंबी सजाएँ देकर वे चैन की नींद सोने की कल्पना भी कर रहे थे। एक शक्तिशाली साम्राज्य की कमजोरी का इससे बढ़कर नमूना और क्या हो सकता है।

गाड़ी सिनेमा हॉल के हाते में पहुँच गई थी, जहाँ मुकदमा चलता था। जहाँ से ये युवक क्रांतिकारी चले थे और अब तक का पूरा सफर आज उनकी आँखों के सामने सिनेमा की रील की भाँति घूम रहा था। पुलिस का आज विशेष प्रबंध था। अनेक योरोपियन सारजेंट पूरी सतर्कता से चलहकदमी कर रहे थे। अदालत के बाहर आज बहुत भीड़ थी। क्रांतिकारी जैसे ही लारी से उतरे, जनता में हलचल मच गई। आज वह आँखें भरकर इन क्रांतिवीरों को देख जो लेना चाहती थी। क्रांतिकारी भी रोज की भाँति अदालत के कमरे की ओर न बढ़कर आज झूम-झूमकर गाने लगे—

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है।

बिस्मिल की इन पंक्तियों को गाते हुए क्रांतिकारी अदालत के भीतर तक गए। वहाँ भारी भीड़ थी। लोग काकोरी के ऐतिहासिक मुकदमे का फैसला सुनने के लिए आए हुए थे। सरकारी और सफाई पक्ष के वकील मौजूद थे। कुछ वकीलों ने आज अदालत में आने की विशेष अनुमति ले ली थी। मुखबिरों की बेंच पर बनारसीलाल और इंद्रभूषण बैठे थे। क्रांतिकारियों के परिवार के लोग और रिश्तेदार भी आज के दिन यहाँ उपस्थित थे।

जज के आते ही अदालत में सन्नाटा चक्कर काट गया। सभी की निगाहें उनके चेहरे की ओर जा पहुँची। उन्होंने बहुत कम शब्दों में षड्यंत्र के विषय में बताया कि वह प्रमाणित हो चुका है। पूरा फैसला 115 छपे हुए पृष्ठों में था। संक्षेप में पढ़ने के बाद वे सीधे सजा पर आ गए। अंग्रेजी वर्णमाला के अनुसार सबसे पहले भूपेंद्रनाथ सान्याल को पाँच साल की सजा सुनाई गई। बाद में जिन लोगों को सजा सुनाई गई, उनमें रामप्रसाद बिस्मिल, राजेंद्रनाथ लाहिड़ी और ठाकुर रोशनसिंह को फाँसी, शचींद्रनाथ सान्याल को आजन्म काला पानी, मन्मथनाथ गुप्त को चौदह साल, योगेशचंद्र चटर्जी, गोविंदचरण कार, मुकुंदीलाल, रामकृष्ण खत्री तथा राजकुमार सिन्हा को दस-दस वर्ष, सुरेशचंद्र भट्टाचार्य तथा विष्णुशरण दुबलिश को सात-सात वर्ष, रामदुलारे त्रिवेदी, प्रेमकिशन खन्ना तथा रामनाथ पांडेय को पाँच-पाँच वर्ष की सजा दी गई। प्रणवेश को चार साल की सजा हुई और इकबाली गवाह बनने के बावजूद बनवारीलाल को पाँच वर्ष की कैद की सजा सुना दी गई।

बिस्मिल ने फाँसी का आदेश बहुत धैर्य से सुना, मानो वे इसके लिए पहले से तैयार बैठे थे। रोशनसिंह के लिए यह सजा अप्रत्याशित थी। उनकी फाँसी की सजा सुनकर तो जैसे सभी को काठ मार गया। जब सजा सुनाई गई तो सब आश्चर्य से एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। रोशनसिंह कुछ चौंके, क्योंकि उन्हें अंग्रेजी नहीं के बराबर आती थी। उन्होंने बगल में खड़े विष्णुशरण दुबलिश से पूछा—"दुबलिश, फाइव इयर्स, फाइव इयर्स के अलावा जज ने कुछ और भी तो कहा है ? वह क्या था ?"

दुबलिश जी ने उनकी कमर में हाथ डालते हुए कहा—"पंडित जी और लाहिड़ी के साथ आपको भी फाँसी की सजा मिली है।"

रोशनसिंह एकदम उछल पड़े और पीछे मुड़कर देखते हुए बोले—"ओ जज के बच्चे, देखा तुमने। फाँसी की सजा मुझे भी मिली है!"

अपने फैसले को रोशनसिंह ने बहुत बहादुरी के साथ सुना और तीन-चार बार 'ओइम' शब्द का उच्चारण किया। उसके बाद साथियों

से बोले—"हमने तो जीवन का आनंद खूब उठा लिया। यदि मुझे फाँसी हो जाए तो कोई गम नहीं है। किंतु तुम लोगों ने तो जीवन का अभी कुछ भी नहीं देखा।" मृत्यु-दंड की सजा सुनकर राजेंद्रनाथ ने मन्मथनाथ से बंगला में कहा—"दुनियाटा जैनो बदले गैलो", अर्थात् दुनिया जैसे बदल गई। फिर अगले ही क्षण सँभलकर वे अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ गए। बोले—"इसे हम पहले से जानते थे। फिर हमें किसी प्रकार का परिताप कैसा। यह मेरा पुनर्जन्म है। मेरी तो थोड़ी देर की तकलीफ है। महीने-दो महीने में खत्म हो जाएगी। किंतु मुझे तो उन लोगों के विषय में चिंता हो रही है जिन्हें चौदह-चौदह वर्ष और बीस-बीस वर्ष तक जेलों में सड़ना है।"

फैसला सुन चुकने के बाद क्रांतिकारियों ने अपने उन साथियों को घेर लिया, जिन्हें फाँसी की सजा का आदेश दिया गया था। बिस्मिल के चेहरे पर अभी भी दृढ़ता और बेफिक्री के निशान उसी तरह थे और राजेंद्र बाबू के होंठों पर बालसुलभ हँसी खेल रही थी। ठाकुर रोशनसिंह तो इस तरह खड़े थे, मानो लोगों को पीछे छोड़कर स्वर्ग की यात्रा पर जा रहे हों। वे एकाएक रामप्रसाद से बोले—"क्यों पंडित, अकेले ही जाना चाहते थे लेकिन यह ठाकुर पीछा छोड़नेवाला नहीं है। वह हर जगह तुम्हारे साथ रहेगा।" बिस्मिल ने उन्हें सीने से लगा लिया। उनकी आँखें डबडबा आईं—"ईश्वर सबको आप जैसा बड़ा भाई दे। आप कुर्बानी में हम सबसे आगे निकल गए।"

उस क्षण बिस्मिल भी रोशनसिंह की यह दिलेरी देखकर भीतर तक हिल गए थे। किसने जाना था कि रोशनसिंह को फाँसी की सजा मिलेगी, पर वे तो जैसे जीवन का सर्वोच्च पुरस्कार पाकर सबसे अधिक खुश नजर आ रहे थे।

सभी छोटे साथियों ने आगे बढ़कर बिस्मिल, राजेंद्र बाबू और रोशनसिंह के चरण स्पर्श किए। वे एक-दूसरे से जी भरकर गले मिले। फाँसी की सजा पानेवाले क्रांतिकारी आज से ही अलग होनेवाले थे, यह सोचकर सभी उदास हो गए। आज उन्हें हमेशा के लिए बिछुड़ना था। क्या अपने साथियों को मौत के मुँह में जाते देखने के लिए ही वे एक साथ इस रास्ते पर चले थे। इस असहनीय वियोग के बोझ को सीने पर पत्थर

रखने की भाँति सहते हुए वे अदालत से निकले तो 'वंदेमातरम्' का गगनभेदी नाद किया। आगे थे दल के नेता पंडित रामप्रसाद बिस्मिल। उन्होंने चलते हुए गाया—

हैफ़ जिस पे हम तैयार थे मर जाने को,
दूर तक यादे-वतन आई थी समझाने को।

उन्होंने और भी गाया—

दरो-दीवार पर हसरत से नज़र रखते हैं,
ख़ुश रहो अहले-वतन हम तो सफ़र करते हैं।

'मरण रे तुइ मम श्याम समान' गुनगुनानेवाले वे अमर क्रांतिकारी उसी रात विभिन्न जेलों में बाँट दिए गए। रामप्रसाद बिस्मिल को गोरखपुर जेल, राजेंद्रनाथ लाहिड़ी को गोंडा तथा ठाकुर रोशनसिंह को इलाहाबाद जेल में भेज दिया गया। शेष क्रांतिकारियों को भी अलग-अलग जेलों में पहुँचा दिया गया।

पूरक मुकदमे में अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ को फाँसी और शचींद्रनाथ बख्शी को काला पानी की सजा हुई। जब सजा सुनाई गई, उसका आँखों देखा हाल बख्शी जी के शब्दों में उद्धृत करने योग्य है—"अशफ़ाक़उल्ला वैसे उम्र में मुझसे डेढ़ साल बड़े ही थे, लेकिन पार्टी के संगठन का ज्यादा पुराना और तजुर्बेकार कार्यकर्त्ता होने के नाते वे मुझे ही बड़ा मानते थे। रोज ब रोज होनेवाले क्रांतिकारी मामलों में वे मुझे ज्यादा प्रवीण भी समझते थे, इसलिए हमेशा मुझसे सलाह लेते थे और उसे मानते भी थे। लेकिन जिस वक्त मुझे और अशफ़ाक़ को सजा सुनाई गई थी—मुझे उम्र कैद, यानी काले पानी की सजा दी गई और अशफ़ाक़ को फाँसी की सजा सुनाई गई—तो मुझे ऐसा लगा मानो अशफ़ाक़ एकाएक मुझसे बहुत ऊँचे हो गए हैं। वैसे मैं बता चुका हूँ कि वे राजकुमारों के समान ऊँचे पूरे और गठे हुए बदन के आकर्षक व्यक्ति थे, पर उस समय तो उनका व्यक्तित्व सहसा मुझे इतना बड़ा लगने लगा कि मेरी समझ में कुछ न

आया। मेरी आँखों से आँसू निकल आए। मैं बड़ी कठिनाई से बंगला में कह सका—'एक यात्रा में पृथक फल नहीं होना चाहिए, मुझे भी यही सजा मिलनी चाहिए।' मेरा गला रुँध गया। मुझसे और कुछ नहीं बोला गया। उस समय अशफ़ाक़उल्ला ही उल्टे मुझे समझाने लगे थे। उनमें धैर्य धारण करने की अद्भुत शक्ति थी।"

अशफ़ाक़ के वकील कृपाशंकर हजेला और चंद्रभानु गुप्त ने जब अशफ़ाक़ की सजा पर उनसे मिलकर अपनी सहानुभूति प्रकट की, तो अशफ़ाक़ का उत्तर था—"अफ़सोस की बात है। इस दिन के लिए तो हम सदा से ही तैयार थे, परंतु मुझे आज खेद केवल एक ही बात का है। मेरे लिए केवल दो महीने पहले ही 'बी' क्लास मिला था और जेल में कुछ खाने का अच्छा प्रबंध कर दिया गया था। इसलिए पिछले हफ्ते में जेल में जब मेरा वजन लिया गया तो जेलर साहब ने कहा कि इस जेल में दाखिल होने के बाद किसी अभियोगी का वजन आज तक इतना नहीं बढ़ा जितना की मेरा वजन निकला, केवल एक अभियोगी का वजन मुझसे भी 10 पौंड ज्यादा था। मैंने उत्तर दिया कि यह भी पूरा करके दिखला दूँगा। अब मुझे केवल यही खेद है कि मैं पूरा न कर सका, क्योंकि आज से काल कोठरी में रखा जाऊँगा। यदि एक हफ्ते देर से फैसला सुनाया जाता तो इस रिकार्ड को भी नीचा कर देता।"

अशफ़ाक़ की बात सुनकर वे आश्चर्यचकित थे।

इसके बाद सी. आई. डी. इंसपेक्टर खैरात नबी अशफ़ाक़ के पास आए और बड़ी विनम्रता और सहृदयता से बोले—"यदि इस मुकदमे के दौरान में कोई बात आपकी शान के खिलाफ हो गई हो तो मुझे माफ कीजिएगा।"

अशफ़ाक़ का उत्तर था—"मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है। आप मुलाज़िम हैं और आपने मुलाज़मत का अपना फर्ज़ अदा किया।" और जब वे जेल के लिए रवाना किए गए, तो वे खुश थे और उनके सुर्ख होंठों पर कौमी नारे तैर रहे थे···

सजा सुनाने के पश्चात अशफ़ाक़उल्ला और शचींद्रनाथ बख्शी को जेल पहुँचाया गया। यहाँ से उनका रास्ता अलग-अलग था। अशफ़ाक़उल्ला को फैजाबाद जेल और बख्शी जी को आगरा के केंद्रीय

कारागार में भेज दिया गया। लखनऊ स्टेशन तक दोनों हमसफर साथ-साथ गए। इसके बाद ऐसे बिछुड़े कि फिर कभी न मिले। अशफ़ाक़ तो चले गए लेकिन बख्शी जी जीवन-भर अपने उस साथी को स्मरण करते हुए अपनी जिंदगी का सफर पूरा करते रहे, जो बहुत आकर्षक व्यक्तित्व और हँसमुख राजकुमारों जैसे चेहरेवाला था। हर कदम और जिंदगी के हर मोड़ पर अशफ़ाक़ की स्मृति उनका संबल बनी रही…।

सेशन कोर्ट का फैसला हो चुकने के बाद क्रांतिकारियों ने अपील करने का निश्चय किया। बनवारीलाल, भूपेंद्रनाथ सान्याल, शचींद्रनाथ सान्याल, शचींद्रनाथ बख्शी और रामकृष्ण खत्री अपील न करनेवालों में थे। उधर सरकार ने भी छह व्यक्तियों के विरुद्ध चीफ कोर्ट से यह दरख्वास्त की कि उनकी सजा कम है। इन व्यक्तियों में थे मन्मथनाथ गुप्त, गोविंदचरण कार, विष्णुशरण दुबलिश, योगेशचंद्र चटर्जी, सुरेशचंद्र भट्टाचार्य और मुकुंदीलाल। चीफ कोर्ट के प्रधान सर लुई स्टुअर्ट ने जस्टिस मोहम्मद रजा के पास अपील की सुनवाई की। मुख्य मुकदमे और पूरक मुकदमे दोनों की अपील एक साथ ही सुनी गई। चीफ कोर्ट ने चारों फाँसी की सजाओं का अनुमोदन कर दिया और विष्णुशरण दुबलिश व सुरेशचंद्र भट्टाचार्य की सजा सात वर्ष से बढ़ाकर दस वर्ष, गोविंदचरण कार, मुकुंदीलाल व योगेशचंद्र चटर्जी की दस वर्ष से आजन्म काला पानी में परिवर्तित कर दी गई। मन्मथनाथ गुप्त की सजा जज ने यह कहकर नहीं बढ़ाई कि इनकी उम्र कम है। सरकार उनकी चौदह वर्ष की सजा से संतुष्ट नहीं थी।

'काकोरी के शहीद' पुस्तक में हमें इस बात का उल्लेख मिलता है कि "इस फैसले से प्रांत के कार्यकर्त्ताओं में और भी असंतोष और क्षोभ हुआ। ठा. मनजीत सिंह एम. एल. सी. ने कौंसिल के आगामी अधिवेशन में इस आशय का प्रस्ताव पेश करने की सूचना दी कि फाँसी की सजा पाए हुए लोगों की सजाएँ कम करके आजन्म काले पानी की सजाएँ कर दी जाएँ। फाँसी 16 सितंबर को होनेवाली थी। इस बीच कौंसिल का अधिवेशन हो रहा था। यह आशंका थी कि कहीं ऐसा न हो कि कौंसिल में प्रस्ताव पेश करने से पहले ही इनको फाँसी पर टाँग दिया

जाए। इसलिए ठा. मनजीत सिंह ने असेंबली के सदस्यों को भी एक पत्र लिखा, जिसमें सजा घटाने का उद्योग करने की प्रार्थना की और यह भी कहा कि ऐसा प्रयत्न किया जाना चाहिए कि युक्त प्रांतीय कौंसिल की आगामी बैठक तक उनकी फाँसी रुक जाए ताकि मैं अपना प्रस्ताव कौंसिल की बैठक में पेश कर सकूँ। एक ओर तो यह कोशिश की गई और दूसरी ओर प्रांतीय कौंसिल के मेंबरों ने गवर्नर साहब के पास एक आवेदन पत्र भेजकर फाँसी पाए हुए अभियुक्तों पर, उनकी युवावस्था के नाम पर दया दिखाने की प्रार्थना की। गवर्नर साहब का शासनकाल समाप्त हो चुका था। वे शीघ्र ही जानेवाले थे। इसलिए मेंबरों को आशा थी कि शायद चलते-चलते इतना सलूक कर जाएँ। किंतु उनकी सब आशाएँ दुराशा मात्र साबित हुईं और गवर्नर महोदय ने दया की प्रार्थना अस्वीकार कर दी। इसी प्रकार की एक दया-प्रार्थना असेंबली और स्टेट कौंसिल के सदस्यों ने वायसराय से भी की थी, किंतु उन्होंने भी इसी निर्दयता के साथ उसे अस्वीकार कर दिया। हाँ, इस लिखा-पढ़ी से इतना जरूर हुआ कि फाँसी की पहली तिथि 16 सितंबर टल गई और उस दिन अभियुक्तों को फाँसी नहीं हुई। इसके बाद फाँसी देने के लिए 11 अक्टूबर की तारीख नियत की गई। अभियुक्तों ने सरकार के मनोभाव जान ही लिए थे, इसलिए यहाँ से कुछ होता न देखकर उन्होंने प्रिवी कौंसिल में अपने मामले की अपील का विचार किया। उन्होंने अपना यह विचार सरकार पर प्रकट किया और इसलिए उन्हें अपील का मौका देने के लिए फाँसी की दूसरी तारीख भी टल गई। अंग्रेजी सल्तनत में न्याय कितना महँगा पड़ता है, यह किसी से छिपा नहीं है। इतने ही मामले में अभियुक्त बहुत बड़ी आर्थिक हानि उठा चुके थे। घर के लोग, सगे-संबंधी सब परेशान हो गए थे। फिर भी, इस आशा से कि शायद वहाँ न्याय हो, उन्होंने लंबा खर्च बरदाश्त करके भी अपील करने का निश्चय किया। येन-केन प्रकारेण धन का प्रबंध करके श्री पोलक महाशय को, जो इंगलैंड में थे, मामले के कागजात सौंपे गए। वहाँ पर एक बैरिस्टर की मार्फत यह अपील प्रिवी कौंसिल में दायर की गई, किंतु प्रिवी कौंसिल के न्यायाधीशों ने इसे इस योग्य भी न समझा कि इसकी सुनवाई की जाए। उन्होंने उस पर विचार करना अस्वीकार कर दिया।

"29 अक्टूबर को प्रिवी कौंसिल में भी काकोरी कैदियों का प्रश्न आया। पं. गोविंदवल्लभ पंत ने सरकार को खूब आड़े हाथों लिया। बहुत देर तक प्रश्नोत्तर होते रहे। किंतु सरकार टस से मस नहीं हुई। ...

"अब सारा खेल खत्म हो चुका था। अपीलें की जा चुकी थीं, कौंसिल में प्रश्न छेड़े जा चुके थे, गवर्नर से दया-प्रार्थना की जा चुकी थी, वायसराय से भी सजा घटाने की प्रार्थना की जा चुकी थी, सम्राट के पास भी प्रार्थना-पत्र भेजे जा चुके थे। जो उपाय शक्ति के अंदर थे, वे सब किए जा चुके थे। किंतु सभी जगह केवल शून्य ही हाथ आया। 19 दिसंबर को अभियुक्तों का फाँसी पर लटकाना अब निश्चित हो गया। प्रांत-भर में बड़ी बेचैनी पैदा हो गई। 17 दिसंबर को प्रांतीय कौंसिल में पं. गोविंदवल्लभ पंत ने फिर इस मामले को उठाया। उन्होंने प्रेसीडेंट से प्रार्थना की कि सब काम बंद करके इस पर विचार किया जाए। पहले प्रेसीडेंट महाशय इस प्रार्थना को अस्वीकार किए देते थे, किंतु तीन बजे के कुछ बाद ही सरकारी काम समाप्त हो जाने पर डिप्टी प्रेसीडेंट ने, जो उस समय प्रेसीडेंट का काम कर रहे थे, कौंसिल की बैठक सोमवार तक के लिए स्थगित कर दी। सोमवार को सबेरे ही फाँसी का समय था। इसलिए मेंबरों में खलबली मच गई। उन्होंने होम मेंबर नवाब साहब छतारी तक के दरे-दौलत की खाक छानी, किंतु कोई सुनवाई न हुई और प्रांतीय कौंसिल में एक शब्द कहने का मौका दिए बिना ही प्रांत के चार होनहार युवक फाँसी के तख्ते की ओर चल दिए।"

रामप्रसाद बिस्मिल के पिता जी ने ढाई सौ रईसों, ऑनरेरी मजिस्ट्रेट तथा जमींदारों के हस्ताक्षर से एक प्रार्थना-पत्र भिजवाया, लेकिन वह भी बेकार साबित हुआ। इसके अतिरिक्त रियासतउल्ला ख़ाँ के संस्मरणों में हमें यह उल्लेख मिलता है—"मैंने कोशिश करके पाँच आदमियों का डेपूटेशन वायसराय साहब बहादुर के पास भिजवाया, जिनके नाम यह हैं—श्री लाला लाजपतराय (पंजाब), श्री मदनमोहन मालवीय (इलाहाबाद), सर नवाब जुल्फ़िकार अली ख़ाँ (पंजाब), मिस्टर दास (बंगाल), सर याकूब साहब (मुरादाबाद)। वायसराय साहब ने अपना मत प्रकट किया कि आइंदा इसकी मिसाल न दी जाए। ये लोग खुशी-खुशी वापस आए और मुझे लांगवुड होटल, शिमला पर

मुबारकबाद दी और कहा कि सज़ा रखी जाएगी और फाँसी न होगी। सज़ा हम तीन-चार साल में मुआफ़ करा देंगे और मुझसे कहा कि आप मकान जाइए। सज़ाए-मौत न दी जाएगी। मैं मकान को वापस चला आया। 15 रोज़ के बाद मेरे एक दोस्त ने, जो वायसराय के दफ्तर में नौकर थे, मुझे खत लिखा कि दया की प्रार्थना ख़ारिज़ हो गई और सज़ाए-मौत बहाल रही, क्योंकि गवर्नर साहब यू. पी. ने वायसराय साहब बहादुर से अपना विरोध प्रकट किया था कि अगर ये लोग छोड़ दिए जाएँगे तो हम यू. पी. की बग़ावत के जिम्मेदार न होंगे। अपील ख़ारिज़ होने पर 16 अक्टूबर, 1927 ई. को सज़ाए-मौत मुकर्रर हुई। मैं अशफ़ाक़ ख़ाँ से मिला। उन्होंने मुझसे कहा कि श्री गणेशशंकर विद्यार्थी से मिलिए। मैं वहाँ गया तो मालूम हुआ कि विद्यार्थी जी सख़्त बीमार हैं और किसी से मिलते नहीं। मैं जनाने दरवाज़े पर गया, इत्तला कराई, मैं अंदर बुला लिया गया। मकान के बालाखाने पर बुलाया गया। वहाँ एक लंबा कमरा था जिसमें विद्यार्थी जी एक पलँग पर लेटे थे। सावधान हो चुके थे। मैं बालाखाने के दरवाज़े पर गया तो देखा दो औरतें बैठी हैं। मैं झिझका। बहुत कमज़ोर आवाज़ में विद्यार्थी जी ने फ़रमाया, अंदर आ जाइए। एक आपकी भावज हैं और दूसरी आपकी भतीजी। मैं अंदर गया। विद्यार्थी जी के आँसू जारी थे, जिन्हें वे बराबर पोंछ रहे थे। मुझसे कहा, आप कृपाशंकर हजेला एडवोकेट से तार दिलवा दीजिए कि हम प्रिवी कौंसिल में अपील करेंगे, सज़ाए-मौत अभी टाल दी जाए। आप घर जाइए, हम रुपया आपको भेज देंगे। मैं वहाँ से घर गया और तार दिलवा दिया। दूसरे रोज़ मैं शाहजहाँपुर से लखनऊ फिर आया और मैंने पचास पौंड कृपाशंकर हजेला एडवोकेट को दिए। उन्होंने तार गवर्नमेंट को भेज दिया। मैं रुपया जमा कर चुका था कि श्री गणेशशंकर विद्यार्थी का एक आदमी एक लिफाफा सील मुहर लगा हुआ लेकर आया। मैंने खोलकर देखा तो बारह सौ रुपए के नोट थे। चूँकि मैं रुपया जमा कर चुका था और अब रुपए की जरूरत नहीं थी, मैंने एक लिफाफा श्री कृपाशंकर हजेला जी से लेकर एक पर्चे पर गणेशशंकर जी का शुक्रिया अदा करते हुए लिखा कि चूँकि मैं रुपया जमा कर चुका हूँ, इन रुपयों की जरूरत अब नहीं है, अतः वापस किए

जाते हैं। लिफाफे में बंद करके हजेला साहब की मोहर लगाकर रुपए मैंने वापस कर दिए। ख़त में लिख दिया कि आपका हज़ार-हज़ार शुक्रिया।

"श्री कृपाशंकर हजेला ने कुल मुकदमे के कागज़ात और मिस्टर सी. बी. गुप्ता एडवोकेट ने विलायत को रवाना कर दिए। विलायत में अपील पेश होने पर ख़ारिज़ हो गई और 19 दिसंबर, 1927 को सजाए-मौत मुक़र्रर हुई।"

जब मुख्य मुकदमे में रामप्रसाद बिस्मिल, राजेंद्रनाथ लाहिड़ी और ठाकुर रोशनसिंह को फाँसी की सजा दी गई तो इसमें कोई संदेह नहीं रह गया था कि अशफ़ाक़उल्ला को भी यही सजा मिलेगी। एक दिन मुकदमे के दौरान ही विशेष खुफिया अधिकारी खान बहादुर तसद्दुक हुसैन ने अशफ़ाक़ के वकील हजेला साहब से कहा—"इस नौजवान को, जो अपने खानदान के रास्ते से गुमराह हो गया है, आपको बचाना चाहिए।"

हजेला साहब का उत्तर था—"मैं बहैसियत वकील के पैरवी करने के सिवा क्या कर सकता हूँ।"

तसद्दुक हुसैन ने प्रस्ताव रखा—"मुख्य मुकदमे का जो दृश्य हुआ है और रामप्रसाद बिस्मिल इत्यादि को जो मौत की सज़ाएँ हुई हैं, आपको मालूम ही है। इसलिए अशफ़ाक़उल्ला यदि अब भी इकबाल कर ले या माफी माँग ले तो मौत की सज़ा तो बच ही जाएगी और बाकी सज़ा से रिहाई या उसमें कमी की कुछ सबील आगे भी हो सकेगी।"

हजेला साहब का उत्तर था—"इस युवक से माफी माँगने की आशा तो कभी की ही नहीं जा सकती और इकबाल करने की आशा करना भी दुष्कर ही है।" बावजूद इसके वे यह विचार करके मुख्य मुकदमे के फैसले के बाद यदि अशफ़ाक़ कोई बयान दे देते हैं तो उससे कोई कानूनी असर मुकदमे पर नहीं पड़ेगा और यदि उससे अशफ़ाक़उल्ला की प्राण-रक्षा हो जाए तो वह उनके तथा देश के हित में भी होगा। उन्हें इस समय अशफ़ाक़ की बूढ़ी माँ की भी याद आई, अशफ़ाक़ जिनके सबसे

छोटे बेटे थे और कि जिनके सामने अशफ़ाक़ की मौत कितनी दर्दनाक हो सकती थी। यह सोचते-सोचते हजेला साहब ने अशफ़ाक़ के सामने तसद्दुक हुसैन का प्रस्ताव रख दिया।

अशफ़ाक़ ने सुना तो उनके चेहरे की आकृति ही बदल गई। दुखी होकर बोले—"हजेला साहब, आपको मालूम है कि मैंने कितनी ज़िद करके आपको अपना वकील किया, जबकि मुझसे बहुत-से लोग, जब मेरा मुकदमा मजिस्ट्रेट की अदालत में था तभी से यह कह रहे थे कि इस अभियोग में मैं ही अकेला मुसलमान हूँ, मुझे किसी अच्छे मुसलमान वकील को सरकार की ओर से अपने लिए नियत कराना चाहिए। परंतु मेरा शुरू से ही आप में अत्यंत विश्वास रहा और अब भी है। इसलिए मैं इन बातों से न डिगा और आप ही को अपना वकील बनाने के लिए ज़िद की। परंतु मैं यह कभी नहीं समझता था कि आप जैसे व्यक्ति भी मुझे केवल फाँसी की सज़ा से बचने के डर से पश्चात्ताप प्रकट करने की सलाह देंगे। मेरे लिए यह नितांत असंभव ही नहीं, वरन् मुझे किसी बात का पश्चात्ताप भी नहीं है क्योंकि जो कुछ मैंने किया, गलत हो या सही, देश की आज़ादी की इच्छा से किया। यद्यपि मेरा मतभेद श्री रामप्रसाद बिस्मिल से बराबर रहा कि बिचपुरी डकैती इत्यादि, जो अपने ही देशवासियों के घरों में पड़ीं, उचित नहीं थीं। परंतु काकोरी ट्रेन घटना के लिए यह नहीं कहा जा सकता। इसको हम लोग अपने उद्देश्य-पूर्ति का एक मार्ग समझते हैं। जैसे कांग्रेस एक मार्ग को अपनाए है, वैसे ही हम लोग इस मार्ग को देश की आजादी के उद्देश्य से अपनाए हैं। यद्यपि इस मार्ग में बहुत खतरे हैं, परंतु अब देश की आजादी के लिए बलिदान की जरूरत है। हाँ, एक यात्री के अकारण मारे जाने का अवश्य अफसोस है। परंतु वह जब अपने डिब्बे से उतरकर दूसरे डिब्बे की ओर, जहाँ उसकी स्त्री बैठी थी, जा रहा था, गोली का शिकार हुआ। रही इकबाल करने की बात, वह केवल अपने विषय में हर समय कहने को तैयार हूँ और सब दोषारोपण अपने ऊपर लेने को तैयार हूँ। परंतु हजेला साहब, आप तो सरल स्वभाव के हैं। आप यह नहीं समझ सकते कि केवल इन बातों से पुलिस कर्मचारियों या अंग्रेज सरकार को संतोष न होगा। वह तो अपनी कारगुजारी दिखाने के लिए और दूसरे ऐसे मुकदमे तैयार करने के

लिए यह चाहेंगे कि मैं दसियों ऐसे आदमियों के नाम, जिनका इन घटनाओं से किंचित भी संबंध नहीं है, परंतु जिनके ऊपर पुलिस की आँखें हैं, मैं अपने बयान में ले लूँ।''

अशफ़ाक़ की लंबी बात सुनकर हजेला साहब बहुत लज्जित हुए और देर तक वे उस नौजवान क्रांतिकारी के विचारों को लेकर सोचते रहे—''कैसा है यह निर्भीक युवक? देश की आजादी के लिए इतना समर्पित कि मौत भी इसे अपने रास्ते से डिगा नहीं सकती।…मैंने ऐसे प्रस्ताव को उसके सामने रखने की धृष्टता क्यों की…''

चीफ कोर्ट से अशफ़ाक़उल्ला की भी अपील खारिज हो गई थी। हजेला साहब लखनऊ की सालिटरी सेल में उनकी प्रिवी कौंसिल में अपील करने के विषय में मिले। अशफ़ाक़ ने उन्हें अंग्रेजी में एक अपील, जो सरकार को भेजने के लिए लिखी थी, दिखाई। उसमें उन्होंने सारा दोष अपने ऊपर ले लिया था और रामप्रसाद बिस्मिल को दोषमुक्त करने की भरसक चेष्टा की थी। हजेला साहब ने कहा कि यह आपने क्या लिखा है। मैंने जो तथ्य बताए थे, यह उनके सर्वथा विपरीत है। ऐसा लिखकर आप अपने को गहरा फँसाने की चेष्टा क्यों कर रहे हैं। इस हालत में तो अपील करना ही व्यर्थ है।

अशफ़ाक़ बोले—''हजेला साहब, मैंने आपसे सदा ही कहा कि मैं केवल सिपाही हूँ और रामप्रसाद हमारे लीडर हैं। वह पक्के देशभक्त और दिमागवाले आदमी हैं। यदि वह किसी तरह मेरी जान की बाजी लगाने पर भी बच जाएँ तो हमारी पार्टी के उद्देश्य की पूर्ति के लिए अच्छा होगा। मैं तो केवल सिपाही हूँ। उनके दिमाग और सूझबूझ को मैं नहीं पहुँचता हूँ।''

''पर आप जिनके लिए दोषी नहीं हैं, वे आरोप अपने ऊपर क्यों ले रहे हैं?''—हजेला साहब ने प्रश्न किया।

अशफ़ाक़ का उत्तर था—''सच तो यह है कि रामप्रसाद जी ने मुझसे दो-तीन दिन पहले रात को बातें करते हुए यह सुझाव दिया कि यदि मैं इस प्रकार की अपील भेजूँ और दूसरी अपील वह स्वयं भेज रहे हैं, तो उनको फाँसी के दंड से मुक्त होने की आशा है। मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि मैं उनकी इच्छा का पालन करूँगा। इसलिए उनके हित के लिए

ही मैंने यह सब किया है।"

इस पर हजेला साहब अशफ़ाक़उल्ला से अपील न भेजने की बात कहकर चले गए। बाद में उन्हें मालूम हुआ कि उनके मना करने पर भी अशफ़ाक़ नहीं माने और उन्होंने अपील भेज दी। सच्ची मित्रता और अपने नेता के प्रति वफादारी का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है...

और जब अशफ़ाक़ की अपील प्रिवी कौंसिल से भी खारिज हो गई, तो उन्होंने फैजाबाद जेल की कालकोठरी से 13 दिसंबर, 1927 को हजेला साहब को एक पोस्ट कार्ड लिखा। पत्र का हिंदी अनुवाद इस प्रकार है—

> आज प्रातः ही मुझे तार द्वारा सरकार से सूचना प्राप्त हुई है कि प्रिवी कौंसिल में अपील अस्वीकृत हो गई। सूचनार्थ आपको यह पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। संभव है आपको भी सूचना मिल गई हो।
>
> मुझे पूर्ण संतोष और प्रसन्नता है कि ईश्वर की यही इच्छा थी कि मेरा कार्यकलाप का अंत देखे। यदि संभव हो तो शीघ्र आकर मिलो। मुझे आपसे और केवल आपसे ही कुछ कहना है।
>
> आपका
> भारतमाता का भक्त
> **अशफ़ाक़**

हजेला साहब इसके बाद अशफ़ाक़उल्ला के दो बड़े भाइयों—रियासत उल्ला ख़ाँ और शहनशाह ख़ाँ तथा उनके दो छोटे भतीजों के साथ 17 दिसंबर को फैजाबाद जेल में मिलने गए। अशफ़ाक़ उस समय काल-कोठरी के बाहर थे और नहाकर आ रहे थे। वे बहुत शांतचित थे। ऐसा लगता था जैसे वे खुदा की इबादत में लीन हों। सभी अशफ़ाक़ को देखकर हैरान थे। दो दिन बाद ही उन्हें फाँसी पर चढ़ना था, पर उनके चेहरे पर कोई शिकन भी नहीं थी।

अशफ़ाक़ जब अपनी काल-कोठरी में पहुँचे तो उन्हें देखकर उनके भाइयों की आँखें भर आईं और दोनों भतीजे रोने लगे। यह देखकर

अशफ़ाक़ ने तुरंत कहा—''हजेला साहब, आप इन लोगों को अपने साथ क्यों लाए। यह रोने का मौका है या खुश होने का। सामनेवाली काल-कोठरी की ओर देखिए। जो लोग इन तीन सेलों में हैं—यह तीनों सगे भाई हैं। एक माँ के पेट से पैदा हुए हैं और एक बाप की औलाद हैं। इन तीनों के ऊपर डेढ़ सेर राब की बाबत झगड़ा होने के कारण दो आदमियों के कत्ल का मुकदमा चला और इन तीनों भाइयों को सज़ाए-मौत मिली। यह तीनों भाई कल फाँसी पर चढ़ जाएँगे। यदि यह तीनों भाई जो अपने बाप के उतने ही लाडले हैं, डेढ सेर राब की खातिर फाँसी पर चढ़ सकते हैं, तो मेरे ऊपर तो हिंदुस्तान की सल्तनत को अंग्रेज़ों से अपने देश के लिए ले लेने की साजिश का मुकदमा चला है। क्या यह मुकदमा अपनी जान की बाजी के लगाने लायक नहीं था? फिर रोने-धोने की क्या बात। इनको तो खुश होना चाहिए कि हमारा भाई व चचा मुल्क के लिए अपनी जान की बाजी लगाकर फाँसी पर चढ़ रहा है। हजेला साहब, इनको बताइए और समझाइए कि हिंदुओं में तो खुदीराम बोस और कन्हाईलाल दत्त जैसी हस्तियाँ गुजर चुकी हैं, जो अपनी जान की बाजी लगा गई हैं। मगर मुसलमानों में शायद मैं पहला खुशनसीब हूँ जो ऐसे क्रांतिकारी षड्यंत्र के सिलसिले में फाँसी पर चढ़ूँगा।''

अशफ़ाक़ के इन शब्दों का हजेला साहब कोई उत्तर न दे सके। सिर्फ सुनते रहे—चुपचाप। बातें और भी हुईं। इसके बाद जब विदा लेने का समय आया तो हजेला साहब ने पूछा—''तुम्हारी आखिरी ख्वाहिश क्या है?''

अशफ़ाक़ ने हँसकर कहा—''हाँ, एक ख्वाहिश है, अगर आप पूरी कर सकें।''

''क्या?''

''परसों सुबह (19 दिसंबर, 1927) को मैं फाँसी के तख्ते पर चढ़ूँगा। देखते जाइए कि मैं किस शौक से फाँसी पर चढ़ता हूँ।''

अब हजेला साहब अपने को रोक नहीं सके। आँखें डबडबा आईं। भरे हुए गले से मुश्किल से कह सके—''वह नजारा देखने की जुरअत तो मुझमें नहीं है, मगर मैं तुम्हारे मज़ार पर जरूर आऊँगा...''

19 दिसंबर, 1927 का दिन चारों क्रांतिकारियों की फाँसी के लिए निश्चित था। यहाँ यह बता दें कि राजेंद्रनाथ लाहिड़ी को गोंडा जेल में दो दिन पूर्व ही 17 दिसंबर को अज्ञात कारणों से फाँसी पर लटका दिया गया। ये अज्ञात कारण क्या थे? मुझे अभी पता लगा—श्री मनमोहन गुप्त ने इस तथ्य कर उद्घाटन किया है कि लाहिड़ी को जेल से छुड़ाने की योजना बनाई जा चुकी थी और इसी भय से वे समय से पहले फाँसी पर लटका दिए गए।

अशफ़ाक़ की फाँसी की सजा के बारे में रामप्रसाद बिस्मिल ने अपने अंतिम समय अपनी आत्मकथा में बहुत मार्मिक शब्दों में लिखा है—''मुझे यदि शांति है तो यही कि तुमने संसार में मेरा मुख उज्ज्वल कर दिया। भारत के इतिहास में यह घटना भी उल्लेखनीय हो गई कि अशफ़ाक़उल्ला ने क्रांतिकारी आंदोलन में योग दिया। अपने भाई-बंधु तथा सगे-संबंधियों के समझाने पर भी कुछ ध्यान न दिया। गिरफ्तार हो जाने पर भी अपने विचारों में दृढ़ रहे। जैसे तुम शारीरिक बलशाली थे, वैसे ही मानसिक वीर तथा आत्मा से उच्च सिद्ध हुए। इन सबके परिणामस्वरूप अदालत में तुमको मेरा सहकारी (लेफ्टीनेंट) ठहराया गया, और जज ने मुकदमे का फैसला लिखते समय तुम्हारे गले में जयमाला (फाँसी की रस्सी) पहना दी। प्यारे भाई, तुम्हें यह समझकर संतोष होगा कि जिसने अपने माता-पिता की धन-संपत्ति को देशसेवा में अर्पण करके उन्हें भिखारी बना दिया, जिसने अपने सहोदर के भावी भाग्य को भी देशसेवा की भेंट कर दिया, जिसने अपना तन-मन-धन सर्वस्व मातृसेवा में अर्पण करके अपना अंतिम बलिदान भी दे दिया, उसने अपने प्रिय सखा अशफ़ाक़ को भी उसी मातृभूमि की भेंट चढ़ा दिया।

'असगर' हरीम इश्क़ में हस्ती ही ज़ुर्म है,
रखना कभी न पाँव यहाँ सर लिए हुए।''

फाँसी से एक दिन पहले कुछ मित्र अशफ़ाक़ से मिलने गए। वे उस समय कुछ दुबले हो गए थे। मित्रों ने कारण पूछा तो बोले—''तुम समझते होगे कि काल कोठरी ने मुझे दुबला कर दिया है। मगर ऐसी बात

नहीं है । मैं आजकल बहुत कम खाता हूँ और इबादत में ज्यादा समय गुजारता हूँ । कम खाने से इबादत में खूब मन लगता है ।''

मित्र उन्हें देखते रह गए । कैसी मस्त तबियत थी उनकी । देशभक्ति के साथ ही उनमें भावुकता भी कूट-कूटकर भरी हुई थी । उस दिन उन्हें अपने पुराने कपड़े मिल गए थे, जिन्हें धोकर उन्होंने पहना था । पैरों में जूता भी था । पहले उबटन लगाकर उन्होंने स्नान किया और बालों को, जिन्हें इस बीच उन्होंने बढ़ा रखा था, साफ किया । काफी सज-धजकर मित्रों से मिले । चेहरे पर फाँसी का कोई भय नहीं था । और वे बहुत खुश नजर आ रहे थे । बोले—''आज मेरी शादी है ।''

मित्रों को ताज्जुब हुआ कि मौत के दरवाजे पर खड़ा हाड़-मांस का एक आदमी इतना दिलेर और बेफिक्र भी हो सकता है । फाँसी तो जैसे उनके लिए कोई जश्न बन गई थी···

अशफ़ाक़ को शिकायत सिर्फ अपने एक दोस्त से रही, जिसके नाम का उल्लेख उन्होंने कहीं नहीं किया । अपनी मासूम जिंदगी की चर्चा करते हुए उन्होंने फाँसी की कोठरी में बैठकर लिखा है—''मगर इस ज़मानए-तालिबेइल्मी का मुझे सबसे ज़्यादा शिकवा आज भी फाँसी की कोठरी में बंद होने पर भी एक ओर महज़ एक दोस्त से है । जिसको मैं दिलोजान से ज़्यादा मोहब्बत करता था । जिसके लिए मैं दुनिया व माफीहा (संसार) से कतई बेख़बर था । जो मेरा दीनो-ईमान था । जो कि मेरा सबकुछ था । भाई की तरह प्यारा, दोस्तों के दायरे में अफ़ज़ल, मगर उसने हमेशा दुख-पर-दुख, तक़लीफ़-पर-तक़लीफ़ दी । मैं उसका नाम न लिखूँगा, जाननेवाले जानते हैं, पढ़नेवाले समझ जाएँगे, वह खुद जान जाएँगे, वह खुद समझ जाएँगे (मैं यह किस्सा नज़रअंदाज़ कर जाता, मुझे इस जमन[1] में आइंदा लिखना है, यों इसका लिखना जरूरी समझा) ख़ुदा उनका भला करे, परवान चढ़ाए, बाल-बच्चों में खुश रखे । मुझको जो-जो भी मायूसियाँ उठानी पड़ीं और मेरी तालीम को नुकसान पहुँचाने का बाइस हुई वह मेरी इन्हीं करमफ़रमा की करमफ़रमाइयाँ थीं । और इन तमाम बातों ने मिलकर मुझे किसी

---

1. बारे में ।

काबिल न बनाया। गो कि वह खुद भी मेरी ही तरह रहे। ख़ैर, वह मजे में हैं चूँकि वह अपनी और महज़ अपनी ही ख़िदमत करना जानते थे और मैं दूसरों के लिए भी कुछ करने का ख़्वाहिशमंद था। और मैं बहुत मशकूर हूँ कि मुझको रिवोल्यूशनरी इन तमाम डिसअपोइंटमेंट्स (नाउम्मेदियों) ने ही बनाया और मैंने जहाँ तक तजुरबाह किया मैं इसी नतीजे पर पहुँचा कि यह डिसअपोइंटमेंट्स ही हैं जो इनसान को उसकी मौत से बेख़ौफ़ बना देते हैं। मुहब्बत का माद्दा जिसके दिल में होगा वही देश के लिए, देश-भाइयों के लिए, सबके लिए सब कुछ कर गुज़रेगा। मसलए-तस्सबुफ[1] में इश्केमज़ाजी[2] इश्केहक़ीक़ी[3] का जीना है, मैंने तो ऐसा ही पाया। यह वही मुहब्बत का माद्दा है तो वतन की तरफ़ रुजू हो गया और मैं मौत का इंतज़ार कर रहा हूँ।''

...और 19 दिसंबर का वह दिन भी आ गया जिसकी प्रतीक्षा की जा रही थी। उस दिन प्रातः रामप्रसाद बिस्मिल ने गोरखपुर जेल में नित्य-कर्म, संध्यावंदन आदि से निवृत्त हो माता को एक पत्र लिखा, जिसमें देशवासियों के नाम संदेश भेजा और फाँसी की प्रतीक्षा में बैठ गए। जब फाँसी के तख्ते पर ले जानेवाले आए, तो वे गीता हाथ में लेकर 'वंदेमातरम्' और 'भारतमाता की जय' कहते हुए तुरंत उठकर चल दिए। चलते समय उन्होंने गाया—

मालिक तेरी रज़ा रहे और तू ही तू रहे,
बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरज़ू रहे।
जब तक कि तन में जान रगों में लहू रहे,
तेरा ही ज़िक्र या तेरी ही जुस्तजू रहे।

फाँसीघर के दरवाजे पर पहुँचकर उन्होंने कहा—''मैं ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विनाश चाहता हूँ।'' इसके बाद तख्ते पर खड़े होकर प्रार्थना और मंत्र उच्चारण करते हुए वे फाँसी के फंदे में झूल गए।

फाँसी के समय जेल के बाहर कड़ा पहरा था। गोरखपुर के इतिहास में यह दर्ज रहेगा कि बिस्मिल की अर्थी के पीछे ऐतिहासिक भीड़ थी।

---

1. संतवाद। 2. मानवीय प्रेम। 3. ईश्वरीय प्रेम।

उस दिन सारा गोरखपुर उमड़ आया था और बिस्मिल के शव पर फूल व इत्र की वर्षा की जा रही थी। 'रामप्रसाद बिस्मिल जिंदाबाद' के नारों से आकाश गुंजायमान हो रहा था। जुलूस मुख्य सड़कों से होता हुआ उर्दू बाजार पहुँचा तो बिस्मिल की माँ ने बीच सड़क पर बिस्मिल की अर्थी को खड़ा किया और ऊँचे स्वर में बोलीं—"आपको कहने की आवश्यकता नहीं है कि मेरी जैसी माँ संसार में इनी-गिनी हैं। मेरे राम ने न केवल मेरी कोख की लाज रखी है, बल्कि आप सबको वह रास्ता दिखाया है जिस पर चलकर आप एक-न-एक दिन देश को अवश्य आजाद करा लेंगे। मेरे पास देश को देने के लिए और कुछ नहीं है, यह राम का छोटा भाई है। इसे मैं जयदेव कपूर के हाथों में सौंपती हूँ और उनसे कहती हूँ कि वे भी इसे राम जैसा ही बनाएँ। यह भी अपने बड़े भाई के पदचिह्नों पर चलकर हँसते-हँसते फाँसी पर झूल जाए, यही मेरी अभिलाषा है।"

इस वीर माँ की आँखों के सामने बड़ी धूम-धाम से आर्यसमाजी रीति से वहीं बिस्मिल का दाह-संस्कार कर दिया गया।

फाँसी के दिन इलाहाबाद जेल में ठाकुर रोशनसिंह पहले से ही तैयार बैठे थे। ज्यों ही डिस्ट्रिक्ट जेल के जेलर का बुलावा आया वे मुस्कराते हुए गीता हाथ में लेकर चल पड़े। फाँसी पर चढ़ते हुए उन्होंने 'वंदेमातरम्' और 'ओइम्' शब्द का उद्घोष किया और गले में फंदा डालकर शहीदों की टोली में जा मिले। जेल के बाहर उनका शव लेने के लिए भारी भीड़ थी, पर जुलूस निकालने की अनुमति नहीं दी गई और आर्यसमाजी रीति से उनका दाह-संस्कार करा दिया गया। अंतिम समय उन्होंने गाया था—

ज़िंदगी ज़िंदादिली को जान ऐ रोशन,
वरना कितने मरे और पैदा होते जाते हैं।

अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ फैजाबाद जेल में उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे, जब उन्हें शहादत का जाम पीना था। वे खुशी के साथ कुरान शरीफ का बस्ता कंधे से लटकाए हाजियों की भाँति 'लवेक' कहते और कलमा पढ़ते हुए फाँसी के तख्ते पर गए। तख्ते का उन्होंने बोसा (चुंबन) लिया

और सामने खड़े लोगों को संबोधित करते हुए कहा–''मेरे हाथ इनसानी खून से कभी नहीं रँगे । मेरे ऊपर जो इल्ज़ाम लगाया गया, वह गलत है । खुदा के यहाँ मेरा इनसाफ़ होगा ।''

उसके बाद गले में फाँसी का फंदा पड़ा और वे खुदा का नाम लेते हुए इस दुनिया से कूच कर गए । मरने से पहले उन्होंने एक शेर कहा था–

तंग आकर हम भी उनके ज़ुल्म के बेदाद से,
चल दिए सूए-अदम ज़िंदाने-फैज़ाबाद से ।

अशफ़ाक़ के रिश्तेदार उनकी लाश को शाहजहाँपुर ले जाना चाहते थे । इसके लिए उन्होंने बहुत आरज़ू-मिन्नत की, तब आज्ञा मिली । शाहजहाँपुर ले जाते समय रास्ते में लखनऊ स्टेशन पर उनकी लाश उतारी गई । 18 दिसंबर को अशफ़ाक़ कंडेम्ड सेल से गणेशशंकर विद्यार्थी के नाम एक तार भेज चुके थे, जिसमें लिखा था–''19 दिसंबर को दो बजे दिन में लखनऊ स्टेशन पर मुझे मिलना । उम्मीद है कि आप मुझसे आखिरी मुलाकात ज़रूर करेंगे ।''

लखनऊ स्टेशन पर विद्यार्थी जी नौ साथियों के साथ मौजूद थे । वे डिब्बे के अंदर आए और अशफ़ाक़ के चेहरे से कफ़न हटाकर शहीद के अंतिम दर्शन किए । परसी शाह फोटोग्राफर से एक फोटो खिंचवाया । उस समय दस घंटे बाद भी अशफ़ाक़ के चेहरे पर अपूर्व शांति थी, मानो अभी-अभी नींद में सोए हों । पर यह नींद अनंत थी, कभी न टूटनेवाली ।

फाँसी के दिन पूरे देश में शोक की लहर दौड़ गई । शोक-सभाओं में शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित की गई । कई जगह छात्रों ने व्रत रखे और फाँसियों की निंदा की । दुख में सभी डूबे थे । देशवासियों के लिए तो जैसे वह अंधकारमय दिन था । पर इन अँधेरों में से ही प्रकाश की किरण फूटने की आशा हम सदैव से करते आए हैं । बिस्मिल ने अंतिम समय कहा भी था–

मरते बिस्मिल, रोशन, लहरी, अशफ़ाक़ अत्याचार से,
होंगे पैदा सैकड़ों उनके रुधिर की धार से ।

काकोरी के चार क्रांतिकारियों को फाँसी और कई को लंबी कैद की सजा देने के बाद भी देश में क्रांतिकारी आंदोलन के उभार को दबाया नहीं जा सका। 1928 से 1931 तक चंद्रशेखर आजाद और भगतसिंह के नेतृत्व में क्रांतिकारी आंदोलन खूब फूला-फला और सांडर्स-वध तथा केंद्रीय असेंबली में बम फेंकने-जैसे बहरों के कान खोल देनेवाले कारनामे हुए। क्रांतिकारियों ने समाजवाद को अपना लक्ष्य बनाया और देश के सामने एक स्पष्ट विचारधारा रखी। इस बार अदालत को अपने सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार के लिए मंच के रूप में इस्तेमाल करने में वे कामयाब हुए और क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में चार चाँद लगा गए।

पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने इन क्रांतिकारियों की हत्या करके अपनी कब्र को और गहरा किया और एक दिन खुद मिट गया…

पत्रों के दर्पण में

पत्र स्वयं को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। अभियुक्तों की यह सबसे आत्मीय और अंतरंग शैली है। अशफ़ाक़उल्ला के पत्र एक बंदी क्रांतिकारी के पत्र हैं, जो बिना किसी दुराव-छिपाव, बिना किसी कृत्रिमता या शब्दाडंबर के लिखे गए हैं। इन पत्रों को पढ़कर हमें अशफ़ाक़ के क्रांतिकारी जीवन, मुकदमे के दौरान उनकी मानसिक स्थिति और जद्दोजहद, उनकी विचारधारा, देश के प्रति उनकी कर्तव्य-भावना और मनुष्य-हृदय की भावनाओं को अच्छी तरह समझने का मौका मिलता है। इन पत्रों में कहीं उन्होंने माँ से बातें की हैं, तो कहीं भाई और भतीजों से गुफ़्तगू। कहीं प्यारी दीदी को स्नेह भेजा है, तो कहीं देश की जनता और अपने साथी से विभिन्न समस्याओं और ज़िंदगी के अनेक पहलुओं पर चर्चा की है। इन पत्रों में एक शहीद का हृदय जीवंत हो उठा है। कुछ पत्र छोटे हैं तो कुछ बहुत लंबे। यदि संबोधन को छोड़ दें तो लगता है कि देश के मसलों पर एक क्रांतिकारी के विचारों का पुलिंदा है यह। इन पत्रों का विशेष महत्त्व इसलिए भी है, क्योंकि ये एक कैदी क्रांतिकारी द्वारा तन्हाई के उन लम्हों में लिखे गए, जहाँ जिंदगी और मौत का फासला बहुत कम रह गया था।

अशफ़ाक़ के लिखे कुछ पत्र पिछले दिनों उनके घर पर हुई चोरी में चले गए और बहुत प्रयास करने पर भी नहीं मिल सके। हम उनके पत्रों में से उन चंद पत्रों को ही यहाँ दे रहे हैं, जो उनके विचारों और ज़िंदगी पर

बखूबी रोशनी डालते हैं। यह पत्र स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास का जीवंत दस्तावेज और राष्ट्र की बहुमूल्य निधि हैं। इन पत्रों के आइने में हम अपने अतीत की ओर झाँककर देख सकते हैं और नई पीढ़ी इनसे दिशा लेकर आगे का रास्ता भी साफ कर सकती है।

यहाँ सबसे पहले हम बनारसीलाल, जो आगे चलकर काकोरी के मुकदमे का मुखबिर बना, को लिखे गए उस पत्र को उद्धृत कर रहे हैं जिसे अशफ़ाक़ ने अपने क्रांतिकारी जीवन के बहुत आरंभिक दिनों में भोपाल से लिखा था। उस समय वे देशसेवा का व्रत तो ले चुके थे, पर क्रांति के रास्ते पर चलना अभी बाकी था। फिर भी इस पत्र से देश की गरीब जनता के प्रति उनकी हमदर्दी, किसानों से उनका लगाव, खेती के महत्त्व और भावी जीवन के उनके इरादों पर रोशनी पड़ती है। उर्दू में लिखा यह पत्र क्रांतिकारी योगेशचंद्र चटर्जी ने उच्च न्यायालय के पुराने अभिलेख से प्रयास करके निकाला। अशफ़ाक़ ने बनारसीलाल को जब यह पत्र लिखा था तो उन्हें क्या पता था कि आगे चलकर यह काकोरी के मुकदमे में 'सबूत' के तौर पर लाया जाएगा। पत्र इस प्रकार है–

''मैं इस बार कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार-विमर्श करना चाहता हूँ। अतः मैंने उर्दू में पत्र लिखना ठीक समझा। मुझे लेनिन का पता आपके पत्र से मालूम हुआ। मैं आज ही उन्हें भी पत्र लिखने का विचार कर रहा हूँ।

राम का क्या हाल है? उनसे मुलाकात होती है या नहीं? तुम्हें आशिक का जो पत्र मिला है उसे तुरंत राम तक पहुँचा दो। राम जितनी जल्दी हो सके मुझे उत्तर दे। तुम्हें ज्ञात है कि मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है जिससे मैं काम चला सकूँ। नौकरी का अर्थ है कि मैं अपनी भावनाओं का खून करूँ। तुम्हें अच्छी तरह याद है कि मैं स्वतंत्र जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। मैं तो स्वतंत्रता का पुजारी हूँ और उसकी एक झलक देखने के लिए प्राण तक निछावर कर सकता हूँ। दासता की माला चाहे वह किसी प्रकार की हो मैं उसे अपने गले में पहिनना नहीं चाहता। मैं उसके विचार से ही घंटों रोता रहता हूँ। लेकिन संबंधियों की इच्छा है कि मैं कोई नौकरी कर लूँ और अपनी वृद्धा माँ की सेवा करूँ। बात एक

हद तक ठीक भी है और हमारा धर्म भी यही आदेश देता है, परंतु मुझे मातृभूमि की सेवा का अवसर न मिलेगा।

यदि आज मैं भोपाल में नौकरी करना चाहूँ तो सर असरार हसन ख़ाँ साहब मुझे कोई-न-कोई नौकरी दिला देंगे। मेरे भाई ने मुझे उनसे मिलने के लिए कहा है और उनकी सिफारिश से मुझे फौज में सूबेदारी तुरंत मिल सकती है। लेकिन इससे मेरी तमाम योजनाओं पर पानी फिर जाएगा। मैं केवल इसीलिए तो अपने जीवन से प्यार नहीं करता कि खूब रुपया कमाऊँ और मौज करूँ, बल्कि मैं तो इसलिए जीवित रहना चाहता हूँ कि मातृभूमि के लिए स्वतंत्रता प्राप्त करूँ। मैं बड़े-से-बड़े खतरे की भी कोई चिंता नहीं करता और न मुझे इस बात की फिकर है कि दुनिया मुझे दीवाना या पागल कहती है। यह मेरा विश्वास है कि मैं इसी के लिए जीऊँगा और इसी के लिए मरूँगा।

यही मैं अनुभव करता हूँ। शाहजहाँपुर की गलियों में घूमते-घूमते मैं थक गया हूँ।

तुम जानते हो कि मैं गाँव का मालिक हूँ, मेरी माँ जमींदार है इसलिए मैं जितनी जमीन चाहूँ मुझे मिल सकती है। मैं खेती-बाड़ी करना चाहता हूँ। लेकिन उसके लिए मेरे पास आवश्यक धन नहीं है। यदि तुम भी खेती-बाड़ी पसंद करो तो इस कार्य में कुछ पैसा लगाओ और आओ हम-तुम दोनों वहाँ चलकर रहें। इस तरह हम अपने किसान भाइयों के बीच में रहेंगे और अपनी योजनाओं को कार्य रूप में परिणत करेंगे और इस तरह कुछ ही वर्षों में हमारे पास धन भी एकत्र हो जाएगा। तब हम बड़े पैमाने पर प्रचार कर सकेंगे और दूसरे मित्रों से कहेंगे कि वे भी हमारे साथ आकर रहें और काम करें। तात्पर्य यह है कि यदि संसार में कोई पवित्र और लाभदायक काम हो सकता है तो वह खेती ही है लेकिन यदि तुम न करना चाहो और अगर अस्वीकार कर दिया तो उससे मेरा दिल टूट जाएगा। तुम्हें हर हालत में अपने बाल-बच्चों के लिए कुछ-न-कुछ करना ही पड़ेगा। तब फिर क्यों न खेती ही शुरू कर दी जाए। पूँजी तुम्हारी, भूमि मेरी और श्रम हम दोनों का। हम दोनों सांसारिक बाधाओं का सामना करने के लिए गाँव में सगे भाइयों की तरह रहेंगे और संसार को दिखा देंगे कि *संसार में नवयुवकों के लिए कौन-सा काम संभव नहीं।*

परंतु यह आवश्यक है कि उनका दिल एक हो, इरादा एक हो और रास्ता एक हो।

नंदिया और सालपुर की जमीनें हमारे लिए गोद पसारे हुए हैं और प्रेम से हमारी बाट जोह रही हैं। वहाँ के किसान हमारे स्वागत के लिए तैयार हैं। इसलिए प्यारे भाई, उन जमीनों को निराश न करो, किसानों के दिल न तोड़ो और मुझे अपने निर्णय से सूचित करो। क्या तुम इसके लिए तैयार हो। यदि मेरे पास पूँजी होती तो मैं फौरन काम शुरू कर देता और तुम्हें अपना भागीदार बना लेता। परंतु खेद है कि मेरे पास एक पाई भी नहीं। मेरे संबंधी किसी भी प्रकार की सहायता करने के बजाए मुझे दासता के गढ़े में ही ढकेलना चाहते हैं। *वे खेती के महत्त्व को समझते ही नहीं कि भारत की स्वतंत्रता किसानों पर निर्भर है।* अत: आओ हम-तुम खेती-बाड़ी शुरू कर दें।

देखो, देवनारायन और गंगासिंह खेती-बाड़ी से कितना लाभ उठा रहे हैं। दो साल बाद बहुत से लोग हमारे साथ आकर मिलने को तैयार हो जाएँगे। तब हम अपनी योजनाओं को कार्य रूप में परिणत करने योग्य हो जाएँगे।

—बारसी"

जेल से अपने भाई को लिखे तीन पत्रों में अशफ़ाक़ ने जिंदगी और मौत की बातें बहुत बेफिक्री से करते हुए खुदा को बार-बार याद किया है। इन्हें पढ़कर लगता है कि मृत्यु का स्वागत करने के लिए वे तैयार बैठे थे। इसे वे अपने लिए परीक्षा की एक घड़ी मानते थे और उस पर खरे उतरने की उनकी हार्दिक इच्छा थी। इन पत्रों में उन्होंने कई बार दोहराया है कि उन पर जो आरोप लगाए गए हैं, वे गलत हैं और खुदा के यहाँ उन्हें इनसाफ मिलेगा। जीवन और मृत्यु के बीच झूलते हुए एक आदमी का मानसिक संतुलन इन पत्रों में और भी द्रष्टव्य है—

डिस्ट्रिक्ट जेल
फैजाबाद

बनाम रियासतउल्ला ख़ाँ, 21 जुलाई, 1927

जनाव भाई साहब किवला बसद अदब गुज़ारिश है कि मैं वख़ैरियत हूँ और ख़ैर व आफ़ियत आप लोगों की बदरगाहे रब्बे वेनियाज़[1] नेक-मतलूब[2]—कार्ड मुरसिला[3] पहुँचा—हालात से आगाही हुई। ऐनुद्दीन साहब के बारे में जो लिखा है उनके लिए मुझे किसी का एक शेर याद आ गया। लिखे देता हूँ :

की मेरे कत्ल[4] के बाद उसने जफ़ा[5] से तोबा,
हाय उस जूद पशेमाँ[6] का पशेमाँ[7] होना।

जिस-जिस ने मुझे फँसाने की कोशिश की उन सबका शुक्रिया। अगर मेरी जान की क़ुर्बानी उन लोगों के मुफ़ीदकार[8] हो तो ज़हे क़िस्मत। मैं भला कहाँ इस क़ाबिल था कि मैं दुनिया में किसी तरक़्क़ी व नामवरी का बाइस होता। ज़िंदगी और मौत यह तो दुनिया में चला ही जाता है। अगर मौत व ज़िंदगी का साथ न होता तो न तो ज़िंदगी का ही मज़ा रहता और न कोई मौत का ख़्याल करता और न ख़ुदा की ख़ुदाई मानता। जो पैदा हुआ, और कुरयेआलम[9] की हवा में साँस ली, उसके लिए मौत ज़रूरी हो गई। अज़आदम ताईदम।[10] बड़े-बड़े अंबिया,[11] औलिया[12] व अतकिया,[13] पहलवानानेतुहमतन[14] हसीनानेदहर[15] गर्ज़ की सभी क़िस्म के आदमी आए और अपना-अपना पार्ट दुनिया के स्टेज पर खेल-खेलकर चले गए। अब न मूसा हैं, न फ़िरऔन, न यूसुफ़ हैं न अज़ीजे मिस्त्र, न कृष्ण हैं न कंस, न राम हैं न रावण, न कारून हैं न उसका ख़ज़ाना और न इमामहुसैन हैं न यज़ीद। हाँ, मगर उनकी याद, उनके कारनामे, उनके आमाल[16] व अकवाल[17] दुनिया के सामने मौजूद हैं और वह उनसे अच्छा या बुरा नतीजा निकालती है। दुनिया में आज मझ पर इन डकैतियों के इलज़ाम में फाँसकर सज़ा दे दी जाए, दे लें, हम

1. अदृश्य ईश्वर से। 2. भली चाहना। 3. भेजा हुआ। 4. हत्या। 5. अत्याचार। 6. लज्जित। 7. लज्जित पर लज्जित होनेवाला। 8. लाभदायक। 9. पृथ्वी का गोला। 10. इस समय तक। 11. नबी का बहुवचन। 12. वली का बहुवचन। 13. परहेजगार। 14. लौह-पुरुष। 15. संसार की सुंदर मूर्तियाँ। 16. कार्य। 17. कथन।

बेवश हैं । हाँ, मगर हाँ, मुंसिफेहकीकी[1] के यहाँ फैसला जरूर होगा, वहाँ न सी. आई. डी. की चालबाजी और न पब्लिक प्रासीक्यूटर के ह्री आरगूमेंट चलेंगे, दूध का दूध और पानी का पानी होगा, मुझे इतमीनान है, मुझे सुकून है, मैं खुश हूँ । मेरा फर्ज़ और क्या है, राज़ी वरज़ाए मौला रहना ।

फ़ैज़े मुहब्बत से है, क़ैदे मेहन[2]
मेरे लिए एक बलाए हुस्न ।[3]

खुदा का खुद कौल है दुनिया में जो कुछ होता है मिनज़ानिब अल्लाह[4] होता है । यह हमारा ईमान है । पस यह भी खुदा की मर्ज़ी है कि मैं फाँसी की कोठरी में बंद किया गया । और इसमें भी कोई भलाई पोशीदा है जो वादीउननज़र[5] में हम लोगों को नहीं मालूम होती । आप लोगों को सब्रो-शुक्र से काम लेना चाहिए और ज़नावे वालिदा साहिबा को अपनी नज़र खुदा की तरफ करनी चाहिए ।

अजब क्या है जो बेड़ा गर्क होकर फिर उभर आए,
कि हमने इनक़लाबे चर्खे गरदूँ[6] यूँ भी देखे हैं ।

खुदा में बड़ी ताक़त है, वह सब कुछ कर सकता है । दुआ करना इनसान का काम है, कबूल करना उसका । अगर ज़िंदगी की रस्सी दराज़ है, तो फ़ैजाबाद से एक दिन दूसरी जगह जरूर जाएँगे । वरना यहीं से ज़िंदगी की आखिरी साँस लेकर दुनिया को खैरबाद[7] कहेंगे । और फिर रोज़ेक़यामत ज़मीने फैजाबाद ही से उठकर खुदायेरब्बेजलील से फ़रयादी होंगे । बहरहाल अभी तो कुछ महीने उम्मीदेज़ीस्त[8] है, यह भी बहुत काफी है । आप सबको मेरा समझाना बेकार है, क्योंकि मैं आप सबका छोटा हूँ । आप लोग खुद अक्लमंद हैं । मेरे मुकदमे की अपील की

---

1. वास्तविक निर्णायक-ईश्वर । 2. रंज । 3. सुंदरता 4. ओर से । 5. सरसरी नजर में । 6. घूमनेवाला आसमान । 7. छोड़ देंगे । 8. जीवन की आशा ।

समाअत शुरू हो गई होगी । न मालूम कैसा रंग है । आप हजेला साहब और गुप्ता साहब को लिख दीजिएगा कि मुझको बराबर मुत्तिला[1] करते रहें कि क्या रंग है । और नतीजे से मुफस्सिल तौर पर इत्तला दें । बख्शी के वालिद का क्या रहा ? और उनकी बहन वगैरह गईं या अभी नहीं ? सब मुफ़स्सिल लिखिएगा । बख्शी के वालिद के मुकदमे का फ़ैसला जो भी हो, लिखिएगा । अपील यहाँ से भेज दी है । कल नक़ले-फ़ैसला भी थी । वह ख़ुद वहाँ वापस हो जाएगी । देखिए वकील कौन लिया जाएगा । आप लखनऊ चौधरी साहब से आकर मिलिएगा और मेरा सलाम कह दीजिएगा कि मेरे केस को आप करें और दीगर कार्यवाहियों से ग़ाफ़िल न हों । अपील में चौधरी साहब का नाम, हजेला साहब का नाम लिख दिया है । अब देखिए कौन मिले । मगर आप कौंसिल के मुतालिक़ ग़ाफ़िल न रहिएगा । अपना आदमी चीफ़ कोर्ट के अंदर होना जरूरी है । हजेला साहब से सलाम कह दीजिएगा, ज़्यादा क्या लिखूँ । भाई साहब अगर आएँ और फल लाएँ तो वह ग़ालिबन मुझको मिल सकते हैं । लखनऊ जेल में बनिस्बत यहाँ के ज़्यादा आराम था । आज तक तो वही खाना मिलता है जो एक अख़लाक़ी मुज़रिम को मिलता है । मगर आज से शायद सुपरिंटेंडेंट साहब कुछ बेहतर दें । मगर कहाँ लखनऊ जेल और कहाँ फ़ैज़ाबाद—

हज़ार शेख़ ने दाढ़ी बढ़ाई सन की-सी,
वलै वह बात कहाँ मौलवी मदन की-सी ।

ख़ैर, फीअमानिउल्ला बुजुर्गों की ख़िदमत में आदाब दस्तबस्ता क़ुबूल हो । बच्चों को प्यार, छोटों को दुआ—

हसरत बहुत है मरतबाए-आशकी बुलंद,
मुझको तो मुफ़्त लोगों ने मशहूर कर दिया ।

खुदा का शुक्र है, यह दिन भी गुज़र जाएँगे । रामप्रसाद का कौन वकील है या खुद वह चीफ़ कोर्ट में लाए जाएँगे । और कौन-कौन

---

1. सूचित ।

किस-किसकी तरफ से है। और जाहिर क्या असबाब[1] हैं ? भाई साहब जब यहाँ आएँ तो लखनऊ में हजेला साहब और गुप्ता जी से मिलकर आएँ और फल वगैरह भी लेकर आएँ। मुन्नू भैया को मेरी ख़ैरियत लिख दीजिएगा। और वहाँ के अहबाब[2] को सलाम कहिए। जिनको लिखा था, उनसे सलाम कह दीजिएगा। अगर वह दोनों आ सकें तो आ सकते हैं, वरना उनकी मर्ज़ी। मुसीबत और दुख में कोई किसी का दोस्त नहीं होता। बनी के सब साथी और दोस्त हैं, यही हाल उनका भी है, नई बात नहीं है। मेरा सबको सलाम। उम्मीद है आप मुफ़स्सिल जवाब देंगे। सैयद को भी खत लिख देना कि मैं अच्छा हूँ और तुम्हारी सबकी मुहब्बत का ख्वाह हूँ। और लिख दीजिएगा कि बूढ़े को भी सलाम कह दें। और मि. जान को भी सलाम कह दें। अब देखना यह है कि आख़िर क्या रहे। दुआ करो उससे जिसको तुम नहीं मानते। ख़ैर ख़ुदा मदद फरमाए! आमीन! यह इबारत बजिनसही[3] लिख दीजिएगा।

—अशफ़ाक़ वारसी 'हसरत'

अज़ ज़िंदाने
फ़ैज़ाबाद
29 नवंबर, 1927

ख़त बनाम रियासतउल्ला ख़ाँ,

प्यारे भाई साहब ! कार्ड मुरसिला आँ जनाब मिला । हालात से अगाही हुई । कज़ा व क़दर[4] में चारा ही क्या है ? रंज़ो-मुसीबत में इन्ना-लिल्लाह[5] पढ़कर सब्र करना चाहिए । इससे कब्ल के खत में साफ लिख दिया कि खुदा हर सूरत से, माल से, औलाद से, जानों से, जानवरों से इम्तिहान लेता है, पस जिसने सब्र किया, उसने उसे राज़ी कर लिया । क्योंकि वह साबिर[6] और शाकिर[7] का साथी है । खुदा ही देता है और खुदा ही लेता है और वह फिर देगा । हर हाल में शुक्र कीजिए । भाभी

1. कारण । 2. मित्रों । 3. ज्यों की त्यों । 4. ईश्वर की इच्छा । 5. सब ईश्वर का है । 6. सब्र करनेवाला । 7. शुक्र करनेवाला ।

को ख़ुदा के सुपुर्द करता हूँ । ख़ैरियत से मुत्तला फ़रमाइएगा । और उम्मीद है कि इस मर्तबा भाई साहब मुझसे मुलाक़ात करने आएँगे । क्योंकि इस मर्तबा उनसे मुलाक़ात करने की मुझे सख़्त ज़रूरत है । मसनवीशरीफ़ मिल गई, खूब है । भाभी की तरफ से फ़िक्र है, जल्द मुत्तला फ़रमाइए । वालिदा साहिबा व भाई साहब क़िबला की ख़िदमत में आदाब दस्तबस्ता कबूल हो ।

—कैदिए ज़िंदाने फ़रंग अशफ़ाक़ वारसी

कंडेम्ड सेल,
फ़ैज़ाबाद
7 दिसंबर, 1927

मुकर्रम[1] व मुअज़्ज़म[2] जनाब भाई साहब क़िबला दामज़िल्लकुम,[3]

बसद अदब गुज़ारिश खिदमते आली है कि मैं बख़ैरियत हूँ और ख़ैरआफ़ियत आपकी मय दीगर मुतअल्लक़ीन के नेक मतलूब । लल्लू भैया (रियासतउल्ला ख़ाँ) के ख़त से मालूम हुआ कि अपील दाख़िल हो गई है । 6 तारीख़ को बाबू मोहन लाल सक्सेना के पास दरियाफ़्तहाल के लिए ख़त लिख दिया है । आप लोगों में जो आए, वह मिलता हुआ आए ताकि ताज़े वाक़ियात व हालात से ख़बर मिले । भाई साहब, दुनियावी ताक़तें मुज़महिल और मज़हूल[4] साबित हुईं । अब उसी का दर खटखटाइए जिसके दरवाज़े से सबको मिलता है और जहाँ से हुक्म सादिर होकर सूरतेअमल अख़्तियार करता है । उसका ज़रा-सा इशारयेकरम क़ाफी है और वह जब पूरा करना चाहता है किसी काम को, तो बस उसको कहता है कि हो जाए और वह हो जाता है । होगा तो वहीं से और न होगा तो उसी के हुक्म से । पस उसी से लौ लगाइए और उसी से इल्तिज़ा[5] और मेरे लिए दुआ फ़रमाइए कि तोबा क़बूल फरमाइए और रहम करे । उसी की दरगाह में इल्तज़ा कीजिए और

1. कृपालु । 2. बुजुर्ग । 3. हमेशा साया रहे मुझ पर आपका । 4. उदास और निरर्थक । 5. प्रार्थना ।

बुज़ुर्गी का दामन थामिए । यही अब कशूदेक़ार[1] का बाइस हो सकता है । मैं अपनी कैफ़िते-क़ल्ब[2] भी लिख नहीं सकता । और यूँ ही मैंने अगले ख़त में आपको भी लिख दिया था कि ज़बानी कहकर सलाह लूँगा और अपने दर्द की दवा ढूँढ़ने के लिए आपसे अर्ज़ करूँगा । लल्लू भैया ने दुनियावी कोशिशों में ख़ाक छान डाली । अब आप मेरी दोनों मुश्किलात[3] में मदद फ़रमाइए । ख़ुदा मालूम मैंने किस सूरत से यह इंतज़ार के दिन गुज़ारे । इस इतवार को ख़त देखते ही तशरीफ लाइए ।

—अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ

अशफ़ाक़ ने माँ को भेजे गए तीन पत्र बहुत विस्तार से लिखे हैं । पहला पत्र जिला जेल लखनऊ से लिखा गया है, जिसमें उन्होंने माँ मज़हरउलनिसाँ बेगम को तसल्ली देते हुए एक ऊँचे और बड़े उद्देश्य के लिए अपने बलिदान की सार्थकता को प्रमाणित किया है । यहाँ वे स्वयं ही वीरोचित मौत प्राप्त करने की बात नहीं करते अपितु अपनी माँ को भी उनके पठान ख़ून और एक बहादुर बेटे की माँ होने के गर्व का स्मरण दिलाते हैं । अशफ़ाक़ की माँ अत्यंत समझदार महिला थीं । उन्हें पुस्तकें पढ़ने का शौक तों था ही, साथ ही अख़बार पढ़ने में भी उनकी बहुत रुचि थी । बताया जाता है कि वे बहुत पान खाया करती थीं और उनके पलँग पर एक तरफ किताबें रखी रहती थीं । साहित्य और शिक्षा से उनके इस गहरे रिश्ते का असर अशफ़ाक़उल्ला पर भी पड़ा । अशफ़ाक़ (अच्छू) उनके सबसे छोटे पुत्र थे, इसलिए चहेते भी । वैसे भी अशफ़ाक़ की माँ पूरे मुहल्ले को अपना प्यार बाँटती थीं । खानदान में उनकी बहुत इज़्ज़त थी । लोगों की मदद करना उनके जीवन का ध्येय था । अशफ़ाक़ की शहादत के दुख को उन्होंने जिस बहादुरी से झेला, वह भी एक मिसाल है ।

माँ को लिखे अशफ़ाक़ के पत्र इस बात का भी प्रमाण हैं कि वे कितने

---

1. मन्यता की परिचायक । 2. मनःस्थिति । 3. धर्म और कर्त्तव्य की कठिन परिस्थितियों में ।

गंभीर मसलों पर अपनी माँ से चर्चा कर सकते थे । इन पत्रों में देश के प्रति उनके मज़बूत इरादों की झलक है और क़ुरबानी का बेमिसाल जज़्बा भी–

डिस्ट्रक्ट जेल,
लखनऊ

जनाब वालिदा साहिबा,

बाद अदब ये गुज़ारिशे-ख़िदमते बाबरकत है कि बंदा ख़ैरियत है और सेहनबरी मिजाज़े आँजनाबा नेक मतलूब । 4 जून को मुकदमे की सुनाई खत्म हो गई और असेसरान की राय भी ले ली गई । यह सुनकर आपको बहुत दुख होगा कि मोअज्जज़ हिंदुस्तानी अससेरान ने क्या राय दी । मैं आपको हरगिज़ न लिखता मगर मैं इसको अपना फ़र्ज़[1] ख़याल करता हूँ कि अपने मुकदमे के हालात से आपको काफी तौर से आगाह कर दूँ । यह तो आप जानती ही हैं कि चार असेसरों में से एक का इंतक़ाल हो गया था और तीन बाक़ी रह गए थे, जिनमें एक ख़ुदातरस[2] बूढ़े ने हम दोनों को बिलकुल बेक़सूर कहा और दो ने न सिर्फ़ ख़ुफ़िया साज़िश करनेवाला ही कहा, बल्कि डाकू भी कहा । ख़ैर इसका अफ़सोस मुझे तो कुछ भी नहीं, आप करें तो करें । यह हिंदुस्तानी ही तो हैं, जो हम पर ज़ुल्म कर रहे हैं । और वह भी हिंदुस्तानी ही तो थे, जिन्होंने मुझको इस मुकदमे में ख़्वाहमख़्वाह[3] घसीटा । अगर अंग्रेज़ आज मेरे ख़िलाफ़ हों और मुझ पर ज़्यादती करें, हक़ बज़ानिब है क्योंकि अपने मुल्क को फ़ायदा वह इसी हाल में पहुँचा सकते हैं कि हम पर हुक़ूमत करें, मगर तआज़्ज़ुब तो इन हिंदुस्तानियों पर है जो इस तरह ख़्वाहमख़्वाह बग़ैर वह यह नहीं जानते कि हक़ीक़तन उनकी क्या इज़्ज़त अंग्रेज़ क़ौम के दिल वह यह नहीं जानते कि हक़ीक़त उनको क्या इज्ज़त अंग्रेज़ क़ौम के दिल में है । अंग्रेज किसी भी ऐसे इनसानों को पसंद नहीं करते जो काम निकालने की ख़ातिर उनकी पीठ ठोंक दिया करते हैं । ख़ैर, मुझे इस मसले पर बहस नहीं करना है । मुझे तो आपको समझाना है । आपसे इस बात के लिए कहना है कि जो आप जैसी ज़ईफ़ के लिए न सिर्फ़ बेजा

---

1. कर्त्तव्य । 2. ईश्वर से डरनेवाला । 3. फिज़ूल ।

बल्कि ज़ुर्म होगा । यानी सबरोसुकून (शांति और धैर्य) के बारे में । बज़ाहिर सब्र तल्ख़ मालूम होता है मगर बाद को मीठा फल लाता है । मैं बचपन से आपकी सब्र आज़मा तबीयत देखता चला आ रहा हूँ और आपको एक साबिर और राज़ीबरजाए मौला (ईश्वर की इच्छा पर राजी) पाया । यूँ ही मैं आज पाक ख़ुदा के नाम पर आपसे सबके लिए अपील करूँगा । आपकी उम्र का आखिरी हिस्सा निहायत अफ़सोसनायक और तक़लीफ़ से भरा हुआ है । मगर यह सब महज़ इस वज़ह से कि ख़ुदा का हुक्म यही है । आराम व राहत, तक़लीफ़ व मसाइब (मुसीबतें) सब उसके हुक्म के ताबे हैं । तारीखे मज़हबी पर एक सरसरी नज़र डालिए । अच्छा वाक़ए-ए-क़रबला को ही लीजिए । क्या किसी मज़हब की ऐसी दर्दनाक और ख़ूनी तारीख़ मिलेगी कि ख़्वातीन (महिलाएँ) ख़ानदाने नबी को अपने बच्चों और घरवालों के ज़नाज़े देखना पड़े । क्या उनकी दानिस्त और इल्म में नेज़ों, तलवारों और तीरों का निशाना न बनाए गए । सब कुछ हुआ और क्यों ? महज़ इसलिए कि आइंदा जब किसी पर दुख और तक़लीफ़ आए, वह इस मिसाल को अपने सामने रखे और सब्र करे । आपको इस किस्म की मिसालें देना, मेरी हिमाक़त होगी, क्योंकि बफ़ज़ले तआला आप मुझसे ज़्यादा लायक़ और वाक़िफ़ हैं । मैं इसे अब मज़ाक समझता हूँ कि लिखूँ कि मैं बेक़सूर हूँ क्योंकि मेरा सबसे बड़ा क़सूर यह था कि मैं मोटा-ताजा हूँ और मिस्टर ख़ैरात नबी की बहस के मुताबिक मुझको बड़ा मुज़रिम होना चाहिए । वह मसख़रापन कोर्ट में हुआ कि ख़ुदा की पनाह । मुझे तो न पहले उम्मीद थी, न अब है, मगर भाई साहब और लल्लू भैया के कहने के मुताबिक़ सफ़ाई वग़ैरह पेश कर दी और चाराज़ोई की—ख़ैर ! अब सुनिए, आपको मालूम हो जाना चाहिए कि ख़ैरात नबी ने साफ अलफ़ाज़ में कह दिया है कि इंतहाई सज़ा मिलेगी (यानी सज़ाए-मौत)मेरे लिए तो यह बड़े मज़े की बात है । मेरे लिए इससे ज़्यादा फ़ख़्र[1] की बात कौन-सी हो सकती है । मेरी माँ से बढ़कर मेरे ख़ानदान में कौन-सी माँ हो सकती है, जिसका बेटा ज़माँमर्दी और बहादुरी से, इस्तक़ामत (साहस और

---

1. गौरव ।

दृढ़ता) व इस्तक़लाल[1] से रास्तबाज़ी (सत्यता) के साथ, मासूमियत का जामा पहने हुए, क़ुर्बानगाहे वतन पर क़ुरबान हो जाए । मेरे सकून व इत्मीनान यूँ है कि मैं अपने को मासूम (निरपराध) समझता हूँ और आपके भी सब्र के लिए यह काफ़ी है कि आपका मासूम लड़का एक ऐसे मक़सद की ख़ातिर जान से जाएगा, जो बड़ा ऊँचा और नेक व पाक है ।

(जेल से आए इस पत्र में इस स्थान पर दो लाइनें काट दी गई, जो पढ़ने में नहीं आती हैं—ले.)

इस इलज़ामात (अभियोग) जो मुझ पर लगाए गए हैं मैं कभी भी इसके लिए तैयार नहीं हूँ । हाँ, एक हिंदुस्तानी होने की वज़ह से अगर यह तमाम बातें हैं तो ख़ैर—दुनियावी बादशाहतें ख़त्म हो जाएँगी । किब्रो-ग़रूर[2] मिट्टी में मिल जाएगा—शौक़त और हशमत (ठाठ-बाट) का कहीं पता भी न होगा मगर हाँ ख़ुदावंद क़ुद्दूस[3] के दरबार में बाक़ियात असली रोशनी में होंगे और वह हाकिम हक़ीक़ी जिसने 'मूसा' और 'फिरऔन' का फ़ैसला किया था मेरा भी करेगा । चंद रोज़ ज़िंदगी पर ख़ुश होनेवाले इनसान ज़ुल्मोतअट्टी[4] करनेवाले सी. आई. डी. के लोग उस दिन मालूम करेंगे कि वे किसके सामने ज़वाबदेह हैं । आप ख़ुदा पर शाक़िर रहिए । सब्र कीजिए और मेरे लिए दुआ फ़रमाइए और अगर उसको मुझे शहादत की इज़्ज़त देना मक़सूद है, तो अज़्मो-इस्तक़लाल, ज़ुरअत[5] व हिम्मत भी अता करे और इम्तिहान के दिन मुझे बहादुर बनाए । आप कभी अफ़सोस न करें कि मैंने ऐनुद्दीन साहब और तसद्दुक़ साहब के कहने पर अमल नहीं किया । क्या वह इस बात की गारंटी कर सकते थे कि मैं कभी न मरूँगा । नहीं, मौत व ज़िंदगी ख़ुदावंदे क़रीम के हाथ में है और दुनियावी ताक़तों से बालातर एक ताक़त है जो निज़ामे-आलम[6] को सँभाले हुए है ।

मौत और ज़िंदगी का साथ है—जो दुनिया में आया वह एक रोज़ ज़रूर मरेगा—फिर एक ऐसी चीज़ से, जिसका आना लाज़िमी है, ज़रूरी है, ग़म करना या ख़ौफ़ खाना फ़िज़ूल व अबस है । मैं अप्रूबर हो सकता

---

1. पक्के और सत्य विचार । 2. बड़प्पन और घमंड । 3. पवित्र ईश्वर । 4. बड़ा जुल्म ढानेवाले । 5. हिम्मत । 6. संसार का प्रबंध ।

था, मैं इक़बाली बन सकता था, मगर दूसरों की जान फँसाने के लिए, अपनी ज़िंदगी बचाने के लिए । वह इनसान जो अपनी ज़िंदगी की ख़ातिर क़मीनी हरक़त करता है, क्या वह आनेवाली नसलों के लिए बाइसे-नाज़[1] हो सकता है—नहीं, कभी नहीं ।

मुझे इत्मीनान है—मुझे ख़ुशी है कि आनेवाली नस्ल मुझको डरपोक और क़मीना न कहेगी, बल्कि सच्चा और बहादुर कहेगी । दुनिया महज़ इसी पर मरती है कि मरने के बाद उसको बुरे अलफ़ाज़ से न याद किया जाए । मसज़िदें, तालाब, मदरसा, कुएँ बनाकर छोड़ जाते हैं ताकि बाद को याद रखे जाएँ। मेरी मार्स्मूमियत भी कभी फरामोश[2] नहीं की जा सकती । बस, मुझे कुछ लिखना नहीं । आपको फ़ख्र[3] करना चाहिए कि आपका बच्चा बहादुरी की मौत मरेगा । अगर मौत से मुक़ाबला करना पड़े तो आपको भी एक बहादुर माँ साबित करना होगा—क्या आपकी रगों में ख़ालिस अफ़गानी ख़ून नहीं हैं । क्या आप मेरी माँ नहीं है । आप पठान हैं, आप मेरी माँ हैं । यह आपके ही दूध का असर है, जो मैं इंतहाई ख़ौफ़नाक बातों पर भी हँस देता हूँ । आप मुझसे मिलने को आएँगी, बोलो—व भाभी आएँगी, मगर बहादुर बनकर आएँ, जैसी पहले बनकर आई थीं । मुझको बहादुर बनाकर वापस जाएँगी । मैं आपसे एक बार मिलकर जबानी बातचीत करना चाहता हूँ । क्या मौत से पहले ख़ुदा के हुक्म बिना मुझको कोई मार सकता है या तक़लीफ़ में डाल सकता है । नहीं, कभी भी नहीं । फिर जो कुछ है सब मिनजानिब अल्लाह है । इस पर सब्र करना शाने-बंदगी है । चंद-बंद किसी के याद आ गए, लिखे देता हूँ । उनको पढ़ लीजिए । लल्लू भैया जब इतवार को आएँ तो महबूब से मिलते आएँ । अगर वह आएँ तो हमराह लेते आएँ और बिस्तरबंद भी जरूर लाएँ ताकि सामान व बिस्तर वगैरह बाँधकर दे दूँ, बिस्तरबंद भले नहीं—

है अर्ज़[4] आज मादरे नाशाद[5] के हुज़ूर[6]
मायूस क्यों हैं आप अलम[7] का है क्यों वफ़ूर[8]

---

1. पक्के और सत्य विचार । 2. बड़प्पन और घमंड । 3. पवित्र ईश्वर । 4. बड़ा जन्म देनेवाले । 5. हिम्मत । 6. संसार का प्रबंध ।

सदमा यह शाक आलमे पीरी में है ज़रूर
लेकिन न दिल से कीजिए सबरो-करार दूर

शायद ख़िज़ा[1] से शक्ल अयाँ[2] हो बहार की
कुछ मसलहत[3] इसी में हो परवरदिगार[4] की

यह जाल ये फ़रेब ये साज़िश[5] यह शोरो शार[6]
होना जो है सब उसके बहाने हैं सर बसर[7]
असबाब ज़ाहिरी हैं न उन पर करो नज़र
क्या जाने क्या हो परदये क़ुदरत से जलवागर[8]

ख़ास उसकी मसलहत कोई पहचानता नहीं
मंजूर क्या उसे है? कोई जानता नहीं

राहत हो रंज़ हो कि ख़ुशी हो कि इंतशार[9]
वाज़िब हर एक रंग में है शुक्रे मिर्दग़ार[10]
तुम ही नहीं हो कुश्तए नेरंगे[11] रोज़ग़ार
मातम क़दे[12] में दहर के लाखों हैं सोगवार[13]

सख़्ती सहीं नहीं ईक उठाई कड़ी नहीं
दुनिया में क्या किसी पे मुसीबत पड़ी नहीं

देखे हैं इससे बढ़के ज़माने ने इन्क़लाब
जिनसे कि बेगुनाहों की उमरें हुईं ख़राब
सोज़े दरूँ[14] से कलबो ज़िग़र हो गए क़बाब
पीरी मिटी किसी की किसी का मिटा शबाब[15]

कुछ बन नहीं पड़ा जो नसीबे बिगड़ गए
वह बिजलियाँ गिरीं कि भरे घर उजड़ गए

पड़ता है जिस गरीब पै रंज़ो-महन[16] का वार,
करता है उनको सब्र अता आप क़िर्दगार[17]

---

1. पतझड़। 2. प्रकट। 3. भेद, कारण,। 4. ईश्वर। 5. षड्यंत्र। 6. फसाद-झगड़ा। 7. प्रत्यक्ष। 8. प्रकाशित। 9. बेचैनी। 9. ईश्वर। 11. जमाने की मारी हुई, सताई हुई। 12. दुख का स्थान। 13. दुखी। 14. आंतरिक पीड़ा। 15. जवानी। 16. शोक। 17. ईश्वर।

मायूस होके होते हैं इन्सां गुनाहगार
यह जानते नहीं, वह है दानाए रोज़गार[1]

इनसान उसकी राह में साबित कदम रहे
मरदन वही है अमरीरज़ा[2] *में जो ख़म रहे*

इन अशआर को जो किसी शाइर ने लिखे हैं, पढ़िए और ख़ुदा से मदद माँगिए । आप कभी भी यह ख़्याल न कीजिए कि आप नुक़सान में हैं । यहाँ पर मुझे एक क़िस्सा याद आ गया । इंगलैंड के एक बड़े शख़्स हिंदुस्तान आए । वह अपनी बीवी के हमराह आगरे गए । जब ताजमहल में पहुँचे तो उनकी बीवी ने कहा कि अगर कोई वायदा करे कि मेरे मरने के बाद ऐसी आलीशान इमारत जैसा यह ताजमहल है, बनाकर मुझे दफ़न करेगा तो मैं इसी वक्त अपने गोली मारने को तैयार हूँ । यह बात उस औरत ने कैसे कही, महज़ इस वज़ह से कि मरने के बाद वह ख़्वाहिशमंद थी कि याद की जाए । हर शख़्स की ख़्वाहिश होती है कि मर जाने के बाद लोग उसको भूले नहीं और याद करें । मैं भी फ़ख़्र करता हूँ कि ख़्वाह मैं इस लायक था, या न था मगर लोग मुझको समझते हैं और हरगिज़ फ़रामोश[3] न करेंगे । मैं सी. आई. डी. का मशकूर हूँ कि उसने हमेशा की ज़िंदगी दे दी, मेरे ख़ानदान को फ़ख़्र करना चाहिए । जो मैं हूँ, वह मैं ख़ुद जानता हूँ, और सी. आई. डी. भी ख़ूब जानती है । ख़ैर, अब ख़त्म करता हूँ, ख़ुदा आपको सब्र अता फ़रमाए और मुझको इस्तक़लाल[4] दे । भाई साहब, अब्दुल क़ादिर दादा, बूलू-भाभी, दिल्लीवाली भाभी, शहादत भाई की दुल्हन को सलाम । रज़ी, अनीसा, ख़लील, रुक़य्या, सुल्ताना, माहज़बीन सबको दुआ व प्यार ।

अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ

---

1. विवेकी । 2. ईश्वर के समक्ष झुकी रहे । 3. न भूलेंगे । 4. साहस ।

फ़ना[1] है सबके लिए हम पै कुछ नहीं मौकूफ़,
बक़ा है एक फ़क़त जाते किब्रियाँ[2] के लिए ।

मेरी सोगवार माँ—भाइयो, बहनो और अज़ीज़ो ! यह ख़त जबकि तुम्हारे हाथ में पहुँचेंगे तब न मालूम तुम्हारा हाल क्या होगा । न मालूम उस वक़्त मैं ज़िंदा रहूँगा या राही-ए-अदम हो चुका हूँगा । मुझे पूरा इतमीनान है कि जेल के हुक्काम यह ख़त ज़रूर रवाना कर देंगे । जबकि यह मरनेवाले की आख़िरी ख़्वाहिश है । बहरहाल मैं लिख रहा हूँ अब ख़ुदा आलिम[3] है कि क्या हो ख़ैर, आख़िरी हुक्म आ गया है, अब दो-एक रोज़ के मेहमान हैं । इनसान की कोशिश हुक्म ख़ुदाबंदी को टाल नहीं सकती । जिसने बिसातेआलम[4] पर मोहरे लगाए, वह मौत के हाथों ज़रूर मात खाएगा । आज आदम ताईदम[5] कौन रहा है या कौन बाक़ी रहेगा । एक ख़ानदान के अंदर दस-पाँच आदमी होते हैं, वक़्तन-फक़्तन जिसका वक़्त पूरा होता जाता है वह कूच कर जाता है । बकिया रोते-धोते हैं जो तक़ाज़ा-ए-मुहब्बत[6] है । मगर इनमें से जाना हर एक को है । कोई जल्दी जाएगा, कोई बदेर । जिसको आप लोग समसझते हैं कि क़बल-अज़्-वक़्त[7] मर गया, वह उम्र ही इसलिए लेकर आया था और बाकी मसलहत ख़ुदा जानता है । जिसको हुक्म उसकी ज़ानिब से होता है वह लब्बैक[8] कहता है और चला जाता है । तुम्हारे दिलों को रंज होगा, ग़म करोगे, मगर ख़ुदा के नाशुक्रे न बनना । सब्र करना और मेरे लिए मग़फ़िरत[9] की दुआ करना कि ख़ुदा मुझ पर रहम करे और ज़वारे रहमत में जगह दे । मैं तुम्हारे लिए सब्र की दुआ करता हूँ । मौत इसी बहाने थी सो आएगी और जो-जो लिखा है वह भी पूरा होगा । उसके हुक्म में मज़ाले दमज़दन[10] नहीं । उसी की अमानत थी उसी की ज़ानिब वापस जाती है । आप लोगों के साथ इतना ताल्लुक़ उसने पैदा कर दिया था, वह अब रखना नहीं चाहता, तुम लोगों को क्या-क्या लिखकर समझाऊँ । मुझमें न इतनी क़ाबिलियत है, न मैं आलिमेदीन हूँ कि मज़हबी बातें लिखूँ या आहादीस[11] वह आयात[12] लिखूँ । हाँ, बस इतना

---

1. समाप्त । 2. ईश्वर । 3. जानता है । 4. संसार का बिछौना । 5. आदम से लेकर मेरे तक । 6. प्रेम रूपी मौन । 7. समय से पहले । 8. हाजिर हैं हम । 9. मोक्ष । 10. दम मारना । 11. मुहम्मद साहब का संदेश । 12. कुरान के वाक्य ।

जानता हूँ और इतना ही लिखना चाहता हूँ कि सब फ़ानी है और सबको फ़ना है । सब मरेंगे, न कोई रहा है और न कोई रहेगा । रहेगा तो वह, बस वही ख़ुदावंदकुद्दूस ही रहेगा जिसने दुनिया रची है । हम लोग ख़ुदा को मानते हैं और मुत्तबए[1] ज़नावेरसूल क़रीम हैं अगर दावा सही है तो बस—

है रज़ा उसकी तो हम पर बहरहाल ये फ़र्ज़
शुक्रे हक़ लब पे रहे शिक़वये-आदा[2] न करें ।
मान लें फ़ैसलाए दोस्त को बेचूनों चरा,[3]
फिकरे-इमरोज़[4] ही रक्खें ग़मे-फ़रदाँ[5] न करें ।

बस जाते ख़ुदावंदी से सामने सरे नियाज़[6] ख़म कर दे और अपने को उसकी मर्ज़ी पर छोड़ दें । रोज़े ज़ज़ा[7] का वह मालिक है । इसका भी ग़म न करें क्योंकि ग़ुलाम है ज़नाबे रसूले क़रीम सलल्लाहो अलैहे वसल्लम के । ऐ मातम कुनिन्नदिमाने-अशफ़ाक़[8] ! सब्र करो और दुआ करो कि वहाँ की मुसीबत आसान हो ।

बनकर मैं रज़ाकार मोहइयाये क़ज़ा हूँ,
आवाज़े हक़े बाँग़े-दिरा[9] मेरे लिए है ।
ख़ुशनूदिए फ़िरऔन के पैरो हैं यज़ीदी,[10]
तक़लीदे शाहे क़रबला मेरे लिए हैं ।[11]

मेरी ज़िंदगी इतनी ही थी । न वह घट सकती है, न बढ़ सकती है । न तुम्हारा नालओबक़ा[12] ही काम आ सकता है । न आह बजारी ही ज़िंदगी का एक लमहा[13] बढ़ा सकती है । हाँ, तुम्हारी दुआएँ मेरे लिए वहाँ काम आ सकती हैं । पर सब्र करो और दुआ से याद करो । मैं नहीं जानता कि मेरी लाश तुम लोगों को दी जाएगी या न दी जाएगी । यूँ तो

---

1. पीछे चलनेवाले । 2. दुश्मन । 3. बिना संकोच । 4. आज ही की चिंता । 5. कल की चिंता । 6. ऐक्षुक माथ । 7. प्रलय । 8. अशफ़ाक़ का शोक मनानेवाले । 9. ईश्वरी घंटे की आवाज यानी ईश्वरीय आज्ञा । 10. जालिम फिरऔन के पक्षपाती हैं यजीद और उसके साथी । 11. करबला के शाह इमाम हुसैन के पद चिह्नों पर चलनेवाला मैं हूँ । 12. रोना-धोना । 13. क्षण ।

जब जान निकल गई फिर मिट्टी का ढेर है । मगर फिर भी मुझे तसफ़ीश[1] है । ख़ैर, मुरदा बदस्त ज़िंदा का मज़मून है । ज़बरदस्ती जो चाहे करे । उसका हरफ़ेल दुरुस्त है । ख़ैर मैं अपने दिमाग को इस ख़याल से परेशान करना नहीं चाहता जो भी हो, हो, इसमें कोई शक़ नहीं है कि मैं तख़्तयेमौत पर खड़ा हुआ यह ख़त लिख रहा हूँ, मगर मैं मुतमइन व ख़ुश हूँ कि मालिक की मर्ज़ी इसी में थी । बड़ा ख़ुशक़िस्मत है वह इनसान जो क़ुर्बानिगाहे वतन पर क़ुर्बान हो जाए । गो कि यह फ़िकरा[2] जिस स्प्रिट के साथ में लिख रहा हूँ वह आप लोगों में नहीं है । यूँ आपको तक़लीफ़ महसूस होगी । मेरी ग़ज़लियात मकान पर मौजूद होंगी । वह आज से बहुत पहले की लिखी हुई हैं, उनको पेशीनगोई[3] समझिएगा और वैसा ही होना था जो कलम से निकला । मेरे सुकून की वजह मेरी बेगुनाही है और यकीन रखिए कि अशफ़ाक़ का दामन इनसानी ख़ून के धब्बों से पाक़ व साफ़ है ।

मेरे घर में आनेवाले बच्चो, और मौज़ूदा छोटो, तुम जब दुनिया में आओगे, मेरी कहानी सुनते पाओगे और तहरीर देखोगे । मेरी इस तहरीर को मेरे दिमाग का असर न समझना । मैं बिलकुल सही दिमाग का हूँ और अक़्ल ठीक काम कर रही है । मेरा मक़सद महज़ आनेवाले बच्चों के लिए लिखना यूँ है कि वह अपने फ़राइज़[4] महसूस करें और मेरी याद ताज़ा रखें । प्यारे रज़ी व ख़लील—तुम्हारा चच्चा चंद रोज़ के बाद इस दुनिया में नहीं रहेगा और हमेशा-हमेशा के वास्ते तुम सबको छोड़ जाएगा । तुमसे वह कुछ नहीं चाहता और न कहना चाहता है । तुम्हारा ख़ुदा मददगार रहे। तुम्हें परवान[5] चढ़ाए। आला तालीम अता[6] फ़रमाए और तुम्हें किसी क़ाबिल बनाए । क़ाबिलेफ़ख़रे ख़ानदान करे ।

किए थे काम हमने भी जो कुछ भी हमसे बन आए;
ये बातें जब की हैं आज़ाद थे और था शबाब[7] अपना ।

---

1. चिंता । 2. वाक्य । 3. भविष्यवाणी । 4. कर्त्तव्य । 5. फूले-फलाए । 6. उच्च आदर्शों की शिक्षा प्रदान करें । 7. जवानी ।

मगर अब तो जो कुछ भी हैं उम्मीदें बस वह तुमसे हैं,
जवाँ तुम हो लबे बाम आ चुका है आफ़ताब[1] अपना।

तुमको बुज़ुर्गों की राय पर चलना चाहिए और तालीम में तन-मन-धन लगा देना चाहिए और बेहतरीन इनसान अपने को साबित करना। मेरी बस तुमसे इतनी ख़्वाहिश है और मौत का ख़याल रखना। वतन की मुहब्बत का मुझ पर इल्ज़ाम लगाया गया है और यूँ ही मुझे सज़ाए-मौत मिली। जब तुम इस क़ाबिल होगे मेरे मुक़दमे की कुल कार्यवाही पढ़ना। ज़्यादा तुमको क्या लिखूँ। मेरी दुआएँ तुम्हारे साथ हैं।

अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ
8, अक्तूबर, 1927

फैसले से एक दिन पूर्व उन्होंने माँ को लिखा था—

जनाबा वालिदा साहिबा,

बख़ैरियत हूँ और जनाबा की ख़ैरियत का ख़्वाहा[2] हूँ। कल फैसला सुनाया जाएगा। ख़ुदा मुझको हिम्मत दे। ताक़त, इत्मीनान दे। सुकूने क़ल्ब अता[3] फ़रमाए। आप सबको सब्र दें। बीवी दुनिया सराय-फ़ानी[4] है। कौन रहा है और कौन रह जाएगा। अज आदम-ताईदम मौत व ज़ीस्त[5] का सिलसिला चला आ रहा है और चला जाएगा। कहाँ तक ग़म, कहाँ तक रंज़ किया जाए। मुझे अपनी सज़ा का कोई ग़म नहीं, कोई रंज़ नहीं। सज़ाए मौत या सज़ाए क़ैद या कोई भी हो मेरा ईमान है कि सब मिनजानिब अल्लाह[6] होगी। फिर "सरे तसलीम ख़म[7] है जो मिजाज़े यार में आए।" मगर जो दुख है वह तुम्हारी ज़ईफ़ी का है। तक़लीफ़ है वह तुम्हारी कमज़ोरी और क़ाबिले-रहम हालत पर। ख़ुदा वाक़िफ़ है कि इस इतवार की मुलाक़ात के बाद किसी घड़ी किसी पल तुम्हारा कमज़ोर चेहरा और नाउम्मीदी से भरे हुए अल्फ़ाज़ फ़रामोश नहीं कर

---

1. सूर्य जो अस्ताचल के कोठे के निकट आ गया। 2. चाहनेवाला। 3. आत्मा की शांति। 4. नश्वर संसार। 5. जीवन। 6. ईश्वर की ओर से। 7. सिर झुकाकर स्वीकार।

सका। ख़ैर, जो मर्ज़ी मौला। मेरी ग़ुज़ारिश और आख़िरी ग़ुज़ारिश यह है कि अगर ख़ुदा ने ज़िंदा मुझको बाहर निकाला, तो आपकी ज़ईफ़ी देखकर जिसकी मुझको उम्मीद तो है ही नहीं, वैसे हुआ है कि ख़ुदा आपको उम्रेनूह[1] अता फ़रमाए। आप अपनी तसवीर हिंगू से खिंचवा लीजिएगा। आप कुछ फ़िक्र न करें। वह आपका दामाद है और सामने आता है यानी सफ़िया का ख़ाविंद[2]। कम-अज़-कम बाहर आकर आपकी तस्वीर से कुछ तसल्ली होगी। आप बख़ूबी वाक़िफ़ हैं कि आपको बिना देखे हुए मैं दो रोज़ भी नहीं रह सकता। मगर यह मसला मज़बूरी और इज़्ज़त व ज़िल्लत का था। लिहाज़ा उन लोगों के कहने पर नहीं चला। क्योंकि ज़िंदगी जैसी ज़लील[3] चीज़ के लिए दुनिया की नज़रों में और अपनी नज़रों में गिरकर रहने से मौत बेहतर व अफ़ज़ल है। काश[4] कि ख़ुदा एक मौका और अता करता कि आपकी ख़िदमत करूँ और क़दमों से ज़ुदा न हूँ। मैं निहायत बदक़िस्मत हूँ कि आपकी ख़िदमत करने का जब मेरा वक़्त आया तो आपके क़दमों से दूर हूँ। ख़ैर ख़ुदा की मर्ज़ी यही थी। आप भी सब्र कीजिए और मेरे लिए दुआ कीजिए। आपको ज़ईफ़ी में जो मुझसे दुख पहुँचा, आप ख़ुदारा मुझे माफ़ फ़रमाइएगा। तब दिल को तस्क़ीन होगी। ज़्यादा क्या लिखूँ। हाँ, एक बात और यह है कि मेरे फ़ैसले के बाद लोगों को ढोंग न फैलाने देना, जो बिहीख़्वाह[5] और दोस्त थे, सब मालूम हो गए। आपके ख़ानदानवालों को भी देख लिया। मेरा ख़ानदान मेरे हक़ीक़ी भाई, मेरी भावज, बहन व बहनोई हैं। और मुल्क़ के हिंदू और मुसलमान मेरे भाई व बुज़ुर्ग हैं। और किसी बदमाश से वास्ता नहीं। जो मुसीबत में शरीक़ था, वह बहादुर और दोस्त है। बाक़ी सब क़मीने हैं, जो आरामो-असाइश के साथी और दुख-दर्द पर अलग। मैं क़सम खाकर कहता हूँ कि मैं उन सबसे नाराज़ हूँ। अगर बाहर निकलने का मौका मिल गया तो उनसे कितातआल्लुक़ करके जानवरों से दोस्ती कर लूँगा। साँपों से प्यार करूँगा। भेड़ियों के गिरोह में बैठा रहूँगा, मगर इन अज़ीज़ों से अलग रहूँगा। फ़ीअमानिल्लाह।[6]

1. नूह पैगंबर की आयु। 2. पति। 3. तुच्छ। 4. क्या ही अच्छा होता। 5. शुभचिंतक। 6. ईश्वर शांति प्रदान करे।

अपना फोटो ज़रूर खिंचवाइएगा और ज़िंदा बाहर निकला तो मेरे लिए वही क़ाफ़ी होगा । अगर वक़्त बराबर आ गया है तो ख़ैर ख़ुदा के सुपुर्द किया ।

आपका ख़ादिम
अशफ़ाक़ वारसी

माँ के नाम फाँसी की कोठरी से 15 दिसंबर, 1927 को लिखे गए अंतिम पत्र को कितने दर्द के साथ उन्होंने लिखा था, जिसमें उन्होंने अपनी कलम से अपनी मृत्यु की ख़बर अपनी माँ को भेजी । बहुत कुछ जो वे लिखना चाहते थे, किन्हीं विवशताओं के कारण लिख नहीं सके और तब उनके पास वक्त भी नहीं था और फाँसी का फंदा सामने झूल रहा था । पत्र इस प्रकार है—

अज ज़िंदाने फ़ैज़ाबाद,
फाँसी की कोठरी,
15 दिसंबर, 1927

दुखिया और बूढ़ी माँ की ख़िदमत में उसके मरते हुए फरज़ंद का सलाम पहुँचे, जो इसी हफ़्ते में इस फ़ानी दुनिया को अलविदा कहकर उस मुल्क़ जावेंदा[1] को जा बसाएगा, जहाँ कि उससे पहले भी सब जा चुके हैं और हर जी रूह उसके बाद भी जाएगा—

फ़ना है सबके लिए हमपे कुछ नहीं मौकूफ़,
बक़ा है एक फक़त जाते किब्रिया[2] के लिए ।

आप भी बखूबी वाकिफ़ हैं और तालीमयाफ़्ता हैं मगर यह ज़रूर है कि बूढ़ी सिनरसीदा[3] दुखिया माँ के लिए यह सदमा जरूर बड़ा है कि उसका जवान बेटा नामुराद दुनिया से उठ जाए और वह उसकी लाश पर दो आँसू भी न डाल सके या उसकी मरी हुई सूरत देख सके । मगर यह तो बताओ यह हुक्म किसका है ? क्या दुनिया के किसी इनसान का हुक्म

---

1. स्थायी देश (परलोक) । 2. ख़ुदा । 3. बूढ़ी ।

है? क्या कोई मुझे उसके हुक्म के बिला मार सकता है? उसने रोज़ेअज़ल[1] से ऐसा ही लिखा था कि अशफ़ाक़ तुझको फाँसी पर मरना है और जब तू मरेगा तो कोई तेरे पास तेरे आइज़्ज़ा व अकरुबा (रिश्तेदार) व अहबाब में से न होगा। पर हुक्म ख़ुदावंदी पूरा होकर रहेगा और ऐसा ही होता चला आया है। मैं यह लिख देना चाहता हूँ कि मैं ब इतमीनान और पुरसुकून (शांति से) मौत मर रहा हूँ। हुक्म ख़ुदा ऐसा ही था और वह अटल है, होकर रहेगा। मौत सबके लिए है और सब मरेंगे। दुनियावी तक़लीफ़, माद्दी बंदिशें, इनसानी क्यूदात[2] सब पीर[3] के रोज़ तक ख़त्म हो जाएँगी और मेरी रूह इस कफसे[4] अंसरी[5] से आज़ाद हो जाएगी। अब दूसरी मंज़िल सामने है, देखिए वहाँ कैसी ग़ुज़रे। यह उसकी बख़्शीश-व-करम पर मुनहसिर है। सफ़र दरपेश है, जादेराह (रास्ते का सामान) पास नहीं। बस उसी की उम्मीदे करम[6] पर ख़ुश-ख़ुश मर रहा हूँ। मैं तो आप सबको अलविदा कहता हुआ आप सबको और ख़सूसन आपको बक़ीया ज़िंदगी में वक़्फ़े-नौहा व बुक़ा[7] करके उस तरफ जा रहा हूँ जहाँ से आया था और फिर वापस जाने का वायदा था। वायदा पूरा करना है। आप सबके सामने राहे अमल क्या है? मैंने तो बुरा किया या अच्छा। मैं इक़रार करता हूँ कि मेरी ज़िंदगी की इतनी बरसें ग़ुमराही, मासियत, सियाकारी (गुनाह) और गुनाहों में ग़ुजरी उसके लिए मेरे दोस्त, मेरे अज़ीज़ मेरे भाई और मुख़्तसिर यह कि हर हमदर्द मुसलमान दुआए मग़फ़िरत (आत्मा की शांति के लिए) करे और आप सब लोग सब्र कीजिए। सब्र तल्खअस्त[8] व लेकिन बरे शीरीं दारद (फल मीठा)—मुझे डर है कि आप घबरा न उठें और यह न कह बैठें कि जिसकी ज़वान औलाद मर जाए वह कैसे सब्र करे तो सुनिए, मेरी प्यारी माँ। ख़ुदा ने मुझको आपके शिक़म[9] से पैदा किया था। मेरी पैदाइश पर ख़ुशियाँ मनाई गई थीं। शुक़राने अदा किए गए थे। और किस्सा मुख़्तसर यह कि मुझको आँखों का नूर और दिल का सुरूर[10] समझा जाता था। आपने इस सिले[11] में ख़ुदा को क्या दिया कि उसने

---

1. सृष्टि के समय। 2. सीमाएँ। 3. सोमवार। 4. पिंजड़ा। 5. चार तत्व निर्मित शरीर। 6. मेहरबानी की आशा। 7. रोता-धोता छोड़कर। 8. कड़ुवा है। 9. पेट। 10. नशा, मस्ती। 11. बदला।

आपको एक इनसान की शक्ल में औलाद दी। आपसे जो भी पूछता था आप यही कहती थीं कि ख़ुदा का बंदा है, ख़ुदा ने दिया है। उसी की अमानत है और मैं अमानतदार हूँ। पस अब मालिक अपने ग़ुलाम को तलब करता है। अमानत रखानेवाला अपनी अमानत तलब करता है। आप ख़यानत न करें, न आपकी चीज़ थी न आपसे छीनी गई। इतने दिन के वास्ते आपको दी गई थी कि रखो, बाद को हम वापस ले लेंगे। अब वापस लिया जा रहा है फिर आपको क्या हक़ है कि रद्दोकद[1] करें। क्या आपने हमेशा से यह सोचा था कि मुझे मौत कभी न आएगी। अरे, तुम भी जानती थीं और मुझे भी मालूम था कि हम-तुम सब मरेंगे, कोई आगे कोई पीछे। या तो मुझको रोना पड़ता तुम्हारे लिए, या तुम्हें मेरे लिए। उसका मंशा यह था कि बूढ़ी माँ जवान औलाद को रोएगी और बक़ीया[2] तीन भाई अपने छोटे भाई का मातम करेंगे। तो क्या कोई आज इस दुनिया में इतनी ताकतवाला है कि ख़ुदाबंद के अहकाम पलट दे? कोई नहीं। अपने ख़ानदान ही में कितनी ऐसी माएँ हैं जो बुढ़ापे में जवान औलाद का दाग़ खोए बैठी हैं और कितने ही ऐसे भाई हैं, जो अपनी आँखें अपने भाई के लिए सुर्ख़ कर चुके हैं और कितनी ही बहनें, भावजें, भतीजियाँ, भतीजे, भानजियाँ, भानजे हैं जो कि, भाई, देवर, चाचा, मामू, के लिए सीनाकोबी[3] कर चुके हैं। दुनिया का यही धंधा है। दुनिया नाम ही उसका है। अगर मरना न होता तो ज़िंदगी का फ़ायदा ही क्या था। अगर रात न हो तो दिन में लज़्ज़त ही क्या। अगर गम न हो तो शादी-ब-मंज़िले ग़म है। गरज़ कि दुनिया एक माज़ूने मुरक्कब[4] है। जिसमें सब जाइके हैं। ऐशो-मसर्रत, ग़मों अंदोह, आराम व तक़लीफ़, ग़फ़लत व बेदारी, नेकी व बदी, मौत व जीस्त, ग़रज़ कि हर चीज़ यहाँ मिलेगी। पास ख़ुशक़िस्मत वह है जिसने अच्छी बातें क़ुबूल कीं और बुराइयों से परहेज़ किया। ग़लफ़त पर होशियारी की तरज़ीह[5] दी और माबूदे हक़ीक़ी[6] की याद में लगा और होशियार रहा अपने फराइज़ की अदायगी में। नेकी को कबूल किया और बदी को ठुकराया। अबदी[1]

---

1. अस्वीकार। 2. शेष रहे। 3. छाती पीटकर रोना। 4. दुख-सुख मिश्रित पदार्थ। 5. उच्चता। 6. ईश्वर।

आराम की ख़ातिर तकलीफ़ बरदाश्त की और इबादत में मसरूफ़ रहा, मौत को पेशेनज़र रखा और ज़ीस्त[2] ही में सामाने आसरत जमा कर लिया। ऐश व इशरत में पड़कर ग़फ़लत नहीं की और पेश आनेवाले ग़म व अंदोह का खटका महसूस करता रहा। पस जिसने इन बातों को अख़्तियार किया और हर मुसीबत व तकलीफ़ व आराम व राहत को मिनजानिब अल्लाह तस्सवर किया और उसकी निआमतों[3] का शुक्रिया अदा किया। इसाइब व तक़लीफ़ पर सब्र किया और कहा कि यह सब मिनजानिबअल्लाह[4] हैं।

दोस्त का दिया हुआ ज़हरेहलाल भी शहद मसफ़्फ़ा ख़याल किया और सब्र किया, शुक्र किया पस राजी कर लिया उसे जो कौनैन[5] का मालिक और मशरिक़ व मग़रिब का रब[6] है। क्या तुम इसके ख़्वाहिशमंद नहीं हो कि ख़ुदा तुम्हारा पैदा करनेवाला है और जिसके सामने तुम्हें जाना है, तुम्हें अपना दोस्त कहकर पुकारे। अरे दुनिया उसकी मुतमन्नी[7] है और वह हमको अपना दोस्त कहे। आज मौत के सामने बैठा हुआ अशफ़ाक़ कुछ ख़्वाहिश नहीं रखता, मगर हाँ वह कह दें कि अशफ़ाक़ मैं तुझसे राज़ी हूँ और तू मेरा बंदा है मैंने बंदगी में क़बूल किया। वह कहता है, ऐ ईमानवालो! बेशक़ अल्लाह सब्र करनेवालों के साथ है। दूसरी जगह फ़रमाता है यानी ख़ुशखबरी सुना दो उन सब्र करनेवालों को कि जब कोई उनको मुसीबत पहुँचती है तो कहते हैं कि बेशाक हम अल्लाह ही के हैं और बेशक हम उसकी तरफ लौटनेवाले हैं। फिर फ़रमाता है यानी यही हैं जिन पर बरक़ात हैं उनके रब की तरफ से और रहमत है। यही लोग हिदायतवाले हैं। यह कौल आपको ज़नाबे बारी[8] के लिख दिए। अब समझना न समझना आपका काम है।

आपका सब्र व शुक्र आपको उसके दरबार में मक़बूल[9] व मुक़र्रब[10] करेगा। और अगर ख़ुदानाख़्वास्ता आप हद से आगे बढ़ गईं तो आप ख़ुद

---

1. सदा रहनेवाला प्रलय काल। 2. जिंदगी। 3. अच्छी-अच्छी चीजें। 4. ईश्वर की तरफ से। 5. संसार। 6. पालनेवाला। 7. इच्छुक। 8. ईश्वर। 9. पसंदीदा। 10. पास ले जाएगा।

समझदार और पढ़ी-लिखी हैं। आपका नालओशेवन,[1] आहवजारी, सीनाकोबी, मुझको ज़िंदा नहीं कर सकती, न मौत से बचा सकती है। हाँ सब्र करना, क़लमा व दरूद पढ़ना और बख़्शना मेरे लिए कुछ सूदमंद साबित हो जाए। पस मेरी अच्छी माँ मेरी ख़ताएँ माफ़ फ़रमाकर मशगूले-ख़ुदा हो जाओ। उसकी मर्ज़ी यही थी और कौन है जो उसके हुक्म को टाल सके। मुझसे आपको दुख पहुँचा। आपका बुढ़ापा बरबाद हो गया। आपकी ज़िंदगी जीक में पड़ गई, मैंने की। हाँ, ज़ाहिर असबाव[2] में से एक मैं भी हूँ। मगर मौला की मरज़ी और उसका हुक्म पोशीदा[3] रहता है। समझदार मिनज़ानिबअल्लाह हर बात को समझते हैं और नासमझ इन्साफ़ों की तरफ ख़याल दौड़ाते हैं। इससे कब्ल[4] एक कार्ड फैसले के मुतआल्लिक़ मिला होगा। कैसे मज़े की बात है कि मैं अपने क़लम से अपनी मौत की खबर आपको पहुँचा रहा हूँ। मैंने एक किताब लिखना शुरू की थी और वह तक़मील को न पहुँच सकी। ख़ैर मालिक की मरज़ी ही न थी जिसमें मेरा मक़सद बच्चों के लिए नसीहत करना था। ख़ैर उनके लिए जो मैदाने अमल[5] है और जो सामने आए उस पर गा़मज़न[6] हो। मुझे जो लिखना है थोड़ा-थोड़ा सब लिख दूँगा क्योंकि अब वक्त मेरे पास मज़मून निग़ारी[7] व क़लम फ़रसाई[8] का नहीं है। मुख़्तसर-मुख़्तसर सबको लिख दूँगा। सब अपना-अपना मतलब निकाल लें। मुझे तो सबसे ज़रूरी आपको लिखना था। और यूँ तो ये मज़मून वाहिद तस्सवुर किया जाए। सभी से सब्र की गुज़ारिश है और सब्र ही ख़ुशी की कुंजी है। मुझे बूबू की भी परेशानियों का इल्म है और आप सबकी कोफ़्त में ऐसे वक्त में इज़ाफ़ा नए ग़म का है। मगर क्या मौला की मर्ज़ी टाली जा सकती है? नहीं हरगिज़ नहीं। वह हर सूरत से आजमाइश कर रहा है। तुम सब्र को हाथ से न जाने दो। जो दोस्त की तरफ़ की ख़ुशी व ग़म मिले मुस्कराते हुए चेहरे और मुतमइन[9] दिल के साथ कबूल करो कि फलाहे दीनी व दुनयवी[10] हासिल कर सका। मैं कोशिश करूँगा कि यह ख़त तुमको मेरी मौत से पहले ही मिल जाए

---

1. रोना-धोना। 2. जाहिरी कारण। 3. छिपा हुआ। 4. पहले। 5. कार्य क्षेत्र। 6. चलें। 7. लेखन कला। 8. कलम घसीटना। 9. संतोष। 10. शोक-परलोक।

ताकि तुम्हारे दुख में कमी हो जाए और तुम सोच सको कि मरनेवाला क्या बात है कि मरते हुए भी मुतमइन व ख़ुश है—''फ़ना[1] है सबके लिए हमपे कुछ नहीं मौकूफ़, बक़ा है एक फ़क़त जाते क़िब्रिया के लिए।'' आदम[2] अलेहिस्सलाम से लेकर इस वक्त तक कौन ऐसा है जो मरा न हो ? जिसने बिसातेआलम पर ज़िंदगी के मोहरे बसाए और मौत के हाथों के सामने ज़रूर मात खाई, पस उसका ग़म बेकार है और आनेवाली ज़रूर आनेवाली बात के लिए परेशान होना सरासर ग़लती है। अब रहा मुहब्बत, डाह, मोह, प्रेम—ये सब दुनियावी धंधे हैं। ख़ुदा से मुहब्बत करो। उसको पूजो जो हमेशा ज़िंदा व कायम रहेगा। तुम्हें अपनी बक़ीया ज़िंदगी में कभी तो उसके लिए रोना नहीं पड़ेगा। बस उसी से मुहब्बत करो और उसी को समझो। अक्ली दलाइल, मज़हबी मसाइल, फलसफ़ियाना बहस दुखे हुए दिल पर नमक-मिर्च का काम करते हैं। मैं ख़ूब जानता हूँ कि आप सोचेंगी कि मैंने अपनी करतूतों से आपका बुढ़ापा ख़राब किया और भाइयों और दीगर आइज्जा[3] की ज़िंदगी दुख की ज़िंदगी बना दी। मैंने क्या किया। मैंने कुछ नहीं किया। उसका हुक्म रोज़ेअज़ल[4] से ऐसा ही था, सो होकर रहा। जो बात होनेवाली होती है असबाब[5] उसके पेशतर से होना शुरू होते हैं और असबाब जब पायए तक़मील[6] को पहुँच जाते हैं, बात पूरी हो जाती है। पस मेरे लिए यह मौत और यह दिन था। सो मुझे मिला। और तुम्हारे लिए दुख, बुढ़ापे का धक्का और सीनाकोबी[7] लिखी थी वह तुम्हें मिल रही है। जो इसके लिए उसने मुनासिब समझा वह उसे तक़सीम कर दिया। पस कौन है जो शिक़वा करे और लब शिकायत के वास्ते खोले—

हम रज़ाकार हैं हम पर बहरहाल यह फ़र्ज़,
शुकरे हक़ लब पे रहे शिक़वये आदा[8] न करे।
मान लें फ़ैसलाए दोस्त को बेचूनो चरा,
फ़िकरे इमरोज़[9] ही रखें, ग़मे फ़रदा[10] न करें।

---

1. मौत। 2. आदि पुरुष। 3. रिश्तेदार। 4. सृष्टि रचना का प्रथम दिन। 5. कारण। 6. कार्य की संपूर्णता। 7. छाती पीटना। 8. दुश्मन की शिकायत। 9. आज। 10. कल।

तुम सबको ग़म उठाने के लिए इंतख़ाब किया और मुझे मन्सूरे वक्त बनाने को चुन लिया। मगर तुमको गिरियए[1] याक़ूब अता किया तो मुझको सुन्नते यूसफ़ी[2] अदा करने के लिए पुकारा। अगर तुमको मातम कुनाँ मिस्ल[3] ख़ानदाने नवबी[4] बनाना चाहा; बना दिया और मुझे मुत्तबए[4] हुसैन शहीदे तेग़ेज़फ़ा[5] के ख़िताब से नवाज़ा।[6] उसकी शान निराली। उसकी अदा अनोखी, हर जगह नए रंग में हर तरफ नए रूप में जलवागर[8] है जो कुछ हुआ और जो होगा और हो रहा है उसकी मरज़ी से हो रहा है और होगा। पस कौन है जो सरताबी[9] करे। और कौन है जो उसके हुक्म से बाहर जा सके। बस उसी पर नज़र रखो और सब्र-क़रार हाथ से न जाने दो। शुक्र करो उसकी अमानत उसकी तरफ जा रही है। और सानआ[10] अपने मननूअ[12] को बिगाड़ना चाहता है। फिर तुम कौन रोनेवाली, तुम कौन तड़पनेवाली? उसकी चीज़ थी उसको अख़तियार है। सब्र करो, सब्र करो और बक़ीया ज़िंदगी का वेशबहा[12] वक्त मेरे लिए रोने में न सर्फ़ करो बल्कि उस सफ़र की तैयारी में लगाओ जो एक दिन दरपेश है। अबादत में मगफ़िरत[13] है। गुनाहों में वक्त न गुज़ार दो क्योंकि यही काम आएगा। ग़फ़लत छोड़ो और उसको पकड़ो। दुनिया फ़ना होनेवाली है और तुम्हारा भी बुढ़ापा है। अच्छा मेरी ख़ताएँ माफ़ करो और मुझे अपने हकूक़ से सुबुकदोश[14] करो। तुमको ख़ुदा की अमान में दिया। तुम्हें नेक बीवी और साबिरा बीवी बनाए। आमीन!

भावजों और भाइयो! अलफ़राक़[15] बीनी व बीनकुम—तुम आपस में मिल-जुलकर रहना और दुखिया व बदक़िस्मत माँ की ख़िदमत में लगी रहना और बक़ीया ज़िंदगी को सकून से गुज़ारने का मौका देना। अगर तुम लोग ऐसे ही जो आपस में शिकवा व शिकायत करते रहे और शकररंजी[16] तुम्हारे दरम्यान रही तो कुछ लुत्फ़ नहीं। शीरोशकर बनकर रहना और ज़ुदा न होना। मेरी तो यही ख़्वाहिश है और मुझे माफ़ी देना। ख़ुदा की मरज़ी यही थी।

---

1. शोक मनाना। 2. हजरत यूसुफ की तरह चलना। 3. मातम मनानेवाला। 4. रसूल के परिवार की तरह। 5. आज्ञाकारी। 6. जुल्म की तलवार मारा हुआ। 7. प्रदान किया। 8. प्रज्जवलित। 9. मर फोड़ना। 10-11. झूठे खिलौनों को बनानेवाला (मनुष्य)। 12. अमूल्य। 13. मोक्ष। 14. छुटकारा। 15. जुदाई। 16. अनबन।

भाइयो ! तुमने इंतहाई कोशिश की मगर मौत और ख़ुदा का हुक़्म टाले से नहीं टलता और पूरा होकर रहेगा । तुम भी मजबूर हो रहे । सब्र-शुक्र करो । ख़ुदा की मरज़ी ही यह है । मैं बताए देता हूँ कि मैं एक पुरसुकून मौत मर रहा हूँ । मैं नहीं कह सकता कि कौन ख़याल मुझे मस्त बनाए हुए है । दिल अंदर से फूला चला जाता है । मुझे कतई ख़याल ही नहीं ग़ुज़रता कि मुझे फाँसी दी जाएगी । मरेंगे तो सब ही कुछ, मैं ही नहीं मर रहा हूँ । तुम ख़ुदा पर नज़र रखो और बजाए रोने-धोने के मेरे ईसाले सवाब[1] में लगे रहना कि वहाँ काम आए । अब ज्यादा क्या लिखूँ । ख़ुदा तुम सबको सब्रे ज़मील अता फ़रमाए और मुझ ग़ुनाहग़ार को ज़वारे रहमत[2] में जगह दे ।

—फ़कता अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ

अशफ़ाक़उल्ला ने फाँसीघर से एक पत्र अपने साथी शचींद्रनाथ बख्शी की बड़ी बहन नलिनी को भी लिखा था । इस पत्र की नकल हमें बख्शी दादा से ही प्राप्त हुई । नलिनी 'बनारस बम कांड' में ग़िरफ़्तार भी हुई थीं और वे दल की बंगाल व उत्तर प्रदेश की शाखाओं के बीच एक कड़ी का काम करती थीं । अनुशीलन के प्रसिद्ध विप्लवी नेता प्रतुलचंद्र गांगुली बनारस आते तो वे नलिनी के पास ही ठहरते और नलिनी उनसे आवश्यक संदेश लेकर दल के नेताओं तक पहुँचाती थीं । क्रांतिकारी कार्यों में लिप्त रहने के लिए ही नलिनी ने तीन वर्ष की जेल भी काटी ।

बख़्शी जी की इस बड़ी बहन को अशफ़ाक़ 'दीदी' कहते थे । उन्हें भेजा गया अशफ़ाक़ का वह मार्मिक पत्र यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ—

---

1. सवाब पहुँचाना । 2. कृपाकोर ।

फाँसीघर
फ़ैज़ाबाद जेल
16-12-1927

अलविंदा

मेरी स्नेहमयी दीदी,

मैं अब दूसरी दुनिया में जा रहा हूँ, जहाँ दुनियावी मुसीबतें नहीं रहेंगी और न जीवन को ज़्यादा उत्तम बनाने के लिए संग्राम करने की ज़रूरत होगी । जहाँ न मौत होगी और न मरने का प्रश्न ! दीदी ! मैं मरने जा रहा हूँ, वरन वस्तुतः अमरत्व प्राप्त करने जा रहा हूँ ।

जब कभी मेरे साथी बख़्शी जी रिहा हों, उन्हें बताइएगा कि मैंने स्थिर मन तथा प्रसन्नचित्त होकर ज़िंदगी की आख़िरी साँस पूरी की है ।

अगला सोमवार मेरे जीवन का अंतिम दिन होगा । आपको मौका मिले, तो अंतिम बार इस भाई से मुलाकात कर जाइएगा । अगर अनुकूल परिस्थिति न हो, तो मैं आप सब लोगों से हमेशा के लिए यहीं से विदा लेता हूँ । मेरा आख़िरी प्रणाम स्वीकार कीजिए और विदा दीजिए । आपको बाद में पता चलेगा कि मैंने मृत्यु को कैसे अपनाया है ।

ख़ुदा आप सबके साथ रहे । बाबा (बख़्शी जी के पिता) को मेरा विनम्र प्रणाम कहिएगा । सावित्री, गौर, कानू तथा अन्य बच्चों को प्यार । नेपाल (बख़्शी जी के छोटे भाई) को मेरा नमस्कार । सब बड़ों को प्रणाम तथा छोटों को प्यार । मेरी यह अभिलाषा है कि आप सबको एक बार फिर से देखूँ । अगर संभव हो तो आप लोग आ जाइएगा । ख़ुदा का ख़याल कीजिए । और मेरे लिए दुखी न होइएगा । मेरे विषय में बख़्शी जी को खबर दीजिएगा । मैं आपको अपनी दीदी मानता हूँ । आप मुझे भूलेंगी नहीं । प्रसन्नचित्त रहिए—यह भी जानिए कि मैं वीरगति प्राप्त कर रहा हूँ । सबको प्रणाम ।

आपका,
अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ वारसी
(मूल हस्ताक्षर अंग्रेजी में)

अंपठनीय हस्ताक्षर
मोहर
ले. कर्नल, आई. ए. एस.
सुप. जेल, फ़ैज़ाबाद

संदेश

देश के सशस्त्र क्रांति के प्रयास में अपने जीवन की आहुति देनेवाले अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ ने जब क्रांतिकारी आंदोलन में प्रवेश किया, तो वे छात्र ही थे । फाँसी पर जाते समय उनकी उम्र कुल जमा सत्ताईस वर्ष की थी । अपने पाँच-सात साल के क्रांतिकारी जीवन में उन्होंने देश की नब्ज़ को भली-भाँति पहचान लिया था । वे क्रांतिकारी दल के सिपाही ही नहीं अपने समय के क्रांतिकारियों में प्रखर चिंतक के रूप में भी हमारे सामने आते हैं । सक्रिय क्रांतिकारी गतिविधियाँ, फरारी जीवन और उसके बाद जेल की जिंदगी में उन्हें इतना समय ही नहीं मिला कि वह अपने विचारों और अनुभवों को पूरी तरह लिपिबद्ध करते । तन्हाई के दिनों में उन्होंने जो लिखा, वह बहुत संक्षिप्त है । उसे पढ़कर लगता है कि वे चाहते हुए भी अपने सोचे हुए को कलम की नोंक पर उतार नहीं सके । वे बच्चों के लिए एक पुस्तक की रचना करना चाहते थे पर उनकी वह इच्छा भी अधूरी रह गई । हम उनके लिखे पत्रों, कविताओं और डायरी के कुछ अंशों से ही उनके जीवन और संघर्ष को जानने का प्रयास कर सकते हैं ।

हिंदू-मुस्लिम एकता और देश की स्वतंत्रता के लिए शहीद होनेवाले अशफ़ाक़उल्ला ने मरने से पहले अपनी डायरी के पन्नों पर हिंदुस्तान का एक खूबसूरत नक्शा भी बनाया था और जिसे शक्ल देते समय वे फ़ाँसीघर में कई बार रोए थे—फूट-फूटकर । मैंने देखा कि उन पन्नों पर

शहीद के आँसुओं के निशान आज भी ज्यों-के-त्यों हैं । कब्र के किनारे से देशवासियों के नाम भेजा गया उनका संदेश आज भी उतना प्रासंगिक है, जितना तब था । जहाँ कहीं, कभी भी देश में सांप्रदायिक कटुता का वातावरण बनता है, लोग हिंदू, मुसलमान या किसी भी दूसरे धर्म के नाम पर मारे जाने लगते हैं और वह आग फैलते-फैलते जब लोगों के घरों और पूरे समाज को अपनी लपटों में जलाने लगती है, तो हमें बार-बार अशफ़ाक़ के कहे वे शब्द याद आते हैं—

न कोई इंगलिश, न कोई जर्मन,
न कोई रशियन, न कोई तुर्की ।
मिटानेवाले हैं अपने हिंदी,
जो आज हमको मिटा रहे हैं ।

कुछ लोग आज भी इस बात को सिद्ध करने की नाकामयाब कोशिश करते हैं और इतिहास में इसे दर्ज करने का प्रयास भी कर रहे हैं कि क्रांतिकारियों के पास देश के लिए कोई स्पष्ट विचार नहीं था, सिवा इसके कि उन्हें राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करनी थी । ऐसे लोग बिना किसी जानकारी के गैरजिम्मेदाराना वक्तव्य देकर नई पीढ़ी को गुमराह कर रहे हैं । अपने संदेश में बहुत साफतौर पर अशफ़ाक़ ने कहा है कि वे किस तरह की आजादी चाहते थे । उनके भारत की कल्पना समाजवादी थी, जहाँ कोई ऊँच-नीच नहीं होगा । ऐसे भारत के निर्माण के लिए उन्होंने किसानों और मजदूरों की तरक्की की बात कही और यह भी कहा कि हमारा उद्देश्य तभी पूरा होगा जब कारखानों और गाँवों में जाकर लोगों के बीच काम किया जाएगा । अशफ़ाक़ शोषण के खिलाफ जंग की बात कहने के साथ ही लोगों को यह भी बताते हैं कि उनका शोषण किस तरह हो रहा है और कौन कर रहा है । उन्हें अपने दुश्मनों की पहचान है । वे कहते हैं—"लुटेरा लूट से, जालिम जुल्म से अपना पेट पालते हैं, वकील मुवक्किलों से, जमींदार काश्तकारों से, सरमायादार मजदूरों से जोंक की तरह चिमटकर उनका खून चूसते हैं और कमजोर हैं, इसलिए लुट जाते हैं । इसका खात्मा करना निहायत ज़रूरी है और उसके खिलाफ जंग फर्ज है ।"

इस अन्याय और शोषण के विरुद्ध अशफ़ाक़ लोगों में जागृति पैदा करने की जरूरत बताते हैं । कम्युनिस्ट ग्रुप से किया गया उनका निवेदन भी गौरतलब है । दूसरी ओर वे अपने इन विचारों के लिए कम्युनिस्ट कहे जाने की भी चिंता नहीं करते । ऐसा सोचनेवाले वे पहले भारतीय क्रांतिकारी हैं । देशवासियों के नाम भेजे गए अपने संदेश में उन्होंने लिखा है—

बिरादराने वतन[1] की ख़िदमत में उनके उस भाई का सलाम पहुँचे जो उनकी इज़्ज़त व नामूसे वतन की ख़ातिर फ़ैज़ाबाद जेल में कुर्बान हो गया । आज जबकि मैं यह पैगाम[2] बिरादराने वतन को भेज रहा हूँ, इसके बाद मुझको तीन दिन और चार रातें और गुजारनी हैं और फिर मैं हूँगा और आगोशे[3] मादरेवतन होगा । हम लोगों पर जो ज़ुर्म लगाए गए थे वह इस सूरत में पब्लिक में लाए गए कि हमको बहुत से लोग जो ग़ैरतालीमयाफ़्ता[4] या हुकूमत के दस्तरख़्वान[5] की पसेख़ुर्दा (बची हुई) हड्डियाँ चचोड़नेवाले थे, डाकू, ख़ूनी, कातिल के लकब से पुकारा किए । मैं आज इस फाँसी की कोठरी में बैठा हुआ भी ख़ुश हूँ और अपने उन भाइयों का शुक्रिया अदा करता हूँ । और कहूँगा—

मर मिटा आप पै कौन/आपने यह भी न सुना,
आपकी जान से दूर/आप से शिकवा है मुझे ।

ख़ैर, यह तुम्हारा फैल[6] है कि हमारी कुर्बानियों को क़बूल न करो और यह हमारा फ़र्ज़ है कि तुम बार-बार ठुकराओ मगर हम तुम्हारा ही दम भरे जाएँगे । बिरादराने वतन, मैं उसी पाक व मुकद्दस[7] वतन ही की कसम खाकर कहूँगा कि हम नंगे नामूसेवतन[8] पर क़ुर्बान हो नए । क्या यह शर्म की बात नहीं थी कि हम अपनी आँखों से देखते कि नित गए मुज़ालिम[9] हो रहे हैं और ग़रीब हिंदुस्तानी हर हिस्सायेमुल्क[10] और खित्तयेदुनिया[11] में ज़लील और रुस्वा[12] हो रहे हैं और कहीं न ठिकाना है

---

1. वतनी भाई । 2. संदेश । 3. गोद । 4. विद्वान । 5. वह कपड़ा जिस पर खाना रखकर खाते हैं । 6. कार्य-कलाप । 7. पवित्र । 8. वतन की इज्जत । 9. जुल्म । 10. देश के भाग । 11. संसार के टुकड़े । 12. अपमानित ।

न सहारा। किस्सा मुख़्तसर ये कि हमारा वतन भी हमारा नहीं। हम पर टैक्स की भरमार, हमारी माली हालत का रोज़बरोज़ गिरते जाना, 33 करोड़ बहादुर हिंदुस्तानी हिंदू और मुसलमान भेड़-बकरियों की मानिंद बनाए गए। हमारे गोरे आका[1] हमें ठोकरें मार दें तो बाजपुर्स[2] न हो। जनरल डायर जलियानवाला बाग को नमूनये हशर[3] बना दे। हमारी माताओं की बेइज़्ज़ती करें। हमारे बूढ़ों और बच्चों पर बम के गोले, गन-मशीनों की गोलियाँ बरसाएँ और हर नया दिन हमारे लिए नई मुसीबतें लेकर आए। फिर भी हम बादये ग़फ़लत[4] रहें। और एशो-इशरत[5] में अय्यामे-जवानी[6] गुज़ार देते। यह ख़याल करके—

जनूने हुब्बे वतन[7] का मज़ा/शबाब[8] में है,
लहू में फिर यह रवानी[9] रहे/रहे न रहे।

जो भी किया, भला किया, आज हम नाक़ाम[10] रहे, डाकू हैं। कामयाब[11] होते मुहिब्बे वतन[12] के पाक लकब से पुकारे जाते। और जो भी आज हम पर झूठी गवाहियाँ दे गए, हमारे नाम के जयकारे लगाते—

बहे बहरे फ़ना[13] में जल्द/यारब लाश बिस्मिल[14] की,
कि भूखी मछलियाँ हैं/जौहरे शमशीरे[15] क़ातिल की।

आह! क्या ऐसे दौर की जिंदगी प्यारी ख़्याल की जा सकती है। जबकि हमारे ही गिरोह-सियासी[16] में खलफ़िशार[17] मचा है। कोई तबलीग़[18] का दिलदादा[19] है, तो कोई शुद्धि पर मर मिटने को बाइसेनिजात[20] समझ रहा है। मुझे तो रह-रहकर इन दिमागों और अक़्लों पर तरस आ रहा है जो कि बेहतरीन दिमाग हैं और माहरीने सियासत[21] हैं। काश[22] कि वह आज़ादिए मिस्र की जद्दोज़हद,[23] एहरारान[24] मिस्र के कारनामे और बर्तानवी सियासी चालें स्टडी कर लें

1. अंग्रेज मालिक। 2. पूछ-गछ। 3. प्रलय का नमूना। 4. गफलत। 5. आराम। 6. जवानी के समय में। 7. देश प्रेम का पागलपन। 8. जवानी। 9. बहाव। 10. असफल। 11. सफल। 12. देश प्रेमी। 13. मौत। 14. मौत का समुद्र। 15. तलवार की धार के पानी की मछली। 16. राजनैतिक समूहों में। 17. झगड़ा। 18. मुसलमान धर्म की दीक्षा देना। 19. प्रेमी। 20. मोक्ष का साधन। 21. राजनैतिक ज्ञानी। 22. यदि ऐसा होता। 23. मिस्र का स्वतंत्रता आंदोलन। 24. स्वतंत्रता संग्रामी।

और फिर हमारे हिंदुस्तान की मौज़ूदा हालत से मुक़ाबिला व मवाज़ना[1] करें, क्या ठीक वही हाल इस वक्त नहीं है। गवर्नमेंट के खुफ़िया एजेंट प्रोपेगेंडा मज़हबी बुनियाद पर फैला रहे हैं। इन लोगों का मक़सद मज़हब की हिफ़ाज़त या तरक़्क़ी नहीं है बल्कि चलती गाड़ी में रोड़ा अटकाना है। मेरे पास वक्त नहीं और न मौका है कि सब कच्चा चिट्ठा खोलकर रख देता जो मुझे अय्यामे फ़रारी[2] में और उसके बाद मालूम हुआ है। यहाँ तक मुझे मालूम है कि मौलवी नियामतुल्ला क़ादियानी कौन था कि क़ाबुल में संगसार[3] किया गया था। वह ब्रिटिश एजेंट था जिसके पास हमारे करमफ़रमा ख़ानबहादुर तसद्दुक हुसैन साहब, डिप्टी सुपरिंटेंडेंट सी. आई. डी. गवर्नमेंट ऑफ इंडिया पैगाम[4] लेकर गए थे मगर बेदारमगज[5] हुक़ूमत क़ाबुल ने इलाज़ ज़ल्द कर दिया और मर्ज़ को फैलने न दिया। मैं अपने हिंदुओं और मुसलमान भाइयों को बता देना चाहता हूँ कि सब ढोंग है जो सी. आई. डी. के ख़ुफ़िया ख़ज़ाने के रुपए से रचा गया है। मैं मर रहा हूँ और वतन पर मर रहा हूँ। मेरा फ़र्ज़ है कि हर नेकोबद[6] बात भाइयों तक पहुँचा दूँ। मानना न मानना उनका काम है। मुल्क़ के बड़े-बड़े लोग इससे बचे हुए नहीं हैं। पस अवाम को आँखें खोलकर इत्तबा[7] करना चाहिए। *भाइयो! तुम्हारी ख़ानाजंगी तुम्हारी आपस की फूट, तुम दोनों में से किसी के भी सूदमंद साबित[8] न होगी।* यह ग़ैरमुमकिन है कि 7 करोड़ मुसलमान शुद्ध हो जाएँ और वैसे ही यह भी महमल[9]-सी बात है कि 22 करोड़ हिंदू मुसलमान बना लिए जाएँ। मगर हाँ यह आसान है और बिलकुल आसान है कि यह सब मिलकर ग़ुलामी का तौक़ गले[10] में डाल लें। ऐ वह कौम जिसका कोई कौमी झंडा नहीं—ऐ वह कि तेरा वतन मेरा वतन नहीं—ऐ वह कि दूसरों की तरफ़ हाथ फैलाए हुए रहम की दरख़्वास्त पर नज़र रखनेवाली बेकस क़ौम[11] तेरी अपनी ग़लतियों का यही नतीज़ा है कि आज तू ग़ुलाम है और फिर वही ग़लतियाँ कर रही है कि आनेवाली नस्लों के लिए धब्बा ग़ुलामी का छोड़ जाएगी कि जो भी सरज़मीने हिंद[12] पर क़दम रखेगा, ग़ुलामी में

1. तोलना, जाँचना। 2. फरारी के दिनों में। 3. पत्थरों से मारना। 4. संदेश। 5. चतुर। 6. भले-बुरे। 7. पैरवी करना, मानना। 8. हानिकारक। 9. निरर्थक। 10. गुलामी की जंजीर। 11. दीनहीन देशवासी। 12. भारत भूमि।

रखेगा और ग़ुलाम बनाएगा। ऐ ख़ुदावंदे क़ुद्दूस[1] क्या कोई ऐसा सबेरा नहीं आएगा कि जिस सुबह को तेरा आफ़ताब[2] आज़ाद हिंदुस्तान पर चमके और फ़िज़ाए हिंद[3] आज़ादी के नारों से गूँज़ उठे। कांग्रेसवाले हों कि सौराजिस्ट,[4] तबलीगवाले हों कि शुद्धीवाले, कम्युनिस्ट हों कि रिवोल्यूशनरी, अकाली हों कि बंगाली, मेरा पयाम हर फ़रज़ंदेवतन[5] को पहुँचे। मैं हर शख़्स को उसकी इज़्ज़त व मज़हब का वास्ता देता हूँ। अगर वह मज़हब का क़ायल नहीं तो उसके ज़मीर[6] को और जिसको भी वह मानता हो, अपील करता हूँ कि हम काकोरी केस के मर जानेवाले नौजवानों पर तरस खाओ। और फिर हिंदुस्तान को सन् 20 व 21 वाला हिंदुस्तान बना दो। फिर अहमदाबाद कांग्रेस जैसा इत्तिहाद[7] इत्तिफ़ाक़ का नज़ारा[8] सामने हो। बल्कि उससे बढ़कर हो और मुकम्मल आज़ादी का ज़ल्द-से-ज़ल्द ऐलान करके इन गोरे आक़ाओं[9] को हटा दो कि ये अब केंचुली उतार चुके हैं और अब वह किसी मंत्र से बस में न होंगे—तबलीग[10] व शुद्धीवालो ख़ुदारा आँखें खोलो, कहाँ थे और कहाँ पहुँच गए, अपनी-अपनी शान ख़त्म करो, सोचो तो मज़हब में जबरदस्ती इखतिलाफ़े राय[11] पर जंग, एक काम नामुकम्मल छोड़कर दूसरी तरफ रुजू[12] हो गए। आज कौन ऐसा हिंदू या मुसलमान है जो मज़हबी आज़ादी इतनी रखता है कि जितना उसका हक़ है? क्या ग़ुलाम क़ौम का कोई मज़हब होता है? तुम अपने मज़हब का सुधार क्या कर सकते हो? तुम ख़ुदा की इबादत पुरसुकून तरीके[13] पर करो। तुम ईश्वर का ध्यान ख़ामोशी से करो और दोनों मिलकर इस सफेद भूत[14] को मंत्र से जंत्र से उतार भगाओ। इसी की यह सारी कार्यवाही है। जब यह भूत उतर जाएगा, हमारी आँखें खुल जाएँगी। आओ हमारी भी सुनो, पहले हिंदुस्तान को आज़ाद करो, फिर कुछ और सोचना, ख़ुदा ने जिसके लिए जो रास्ता मुंतख़िब[15] कर दिया है, वह उसी पर रहेगा। तुम किसी को भी नहीं हटा सकते। *आपस में मिल-जुलकर रहो और मुत्तहिद[16] हो जाओ,*

1. पवित्रतम ईश्वर। 2. सूर्य। 3. भारत के वातावरण में। 4. स्वराज्य प्रचारक। 5. भारती पुत्रों। 6. आत्मा। 7. मेल-मिलाप। 8. दृश्य। 9. मालिकों। 10. मुसलमान न बनानेवालों। 11. जबरदस्ती हठ के साथ धर्म के भेदभाव। 12. मुड़ गए। 13. स्वतंत्रता के साथ ईश्वर उपासना। 14. गोरे भूत अर्थात् अंग्रेजों को। 15. रास्ते चुनो। 16. मिल-जुलकर।

नहीं तो सारे हिंदुस्तान की बदबख़्ती[1] *का वार तुम्हारी गर्दन पर है और गुलामी का बाइस*[2] *तुम हो।* कम्युनिस्ट ग्रुप से अशफ़ाक़ की ग़ुज़ारिश है कि तुम इस ग़ैरमुल्क़ की तहरीक[3] को लेकर जब हिंदुस्तान में आए हो तो तुम अपने को ग़ैरमुल्क़ी ही तसव्वुर[4] करते हो, देसी चीज़ों से नफ़रत, विदेशी पोशाक और तर्ज़ेमआशरत[5] के दिलदादा[6] हो, इससे काम नहीं चलेगा। अपने असली रंग में आ जाओ। देश के लिए जिओ, देश के लिए मरो। मैं तुमसे काफी तौर पर मुत्तफ़िक़[7] हूँ और कहूँगा कि मेरा दिल ग़रीब किसानों के लिए और दुखिया मज़दूरों के लिए हमेशा दुखी रहा है। मैं अपने अय्यामे फ़रारी[8] में भी अक्सर इनकी हालत देखकर रोया किया हूँ क्योंकि मुझे इनके साथ दिन ग़ुज़ारने का मौक़ा मिला है। मुझसे पूछो तो मैं कहूँगा कि मेरा बस हो तो मैं दुनिया की हर मुमकिन चीज़ इनके लिए वक़्फ़[9] कर दूँ। हमारे शहरों की रौनक इनके दम से है। हमारे कारखाने उनकी वजह से आबाद और काम कर रहे हैं। हमारे पंपों से इनके हाथ ही पानी निकालते हैं, ग़र्ज़ कि दुनिया का हर एक काम इनकी वजह से हुआ करता है। ग़रीब किसान बरसात के मूसलाधार पानी और जेठ-बैसाख की तपती दोपहर में भी खेतों पर जमा होते हैं और जंगल में मँडलाते हुए हमारी ख़ुराक़ का सामान पैदा करते हैं। यह बिलकुल सच है कि वह जो पैदा करते हैं जो वह बनाते हैं, उनमें उनका हिस्सा नहीं होता, हमेशा दुखी और मफ़लूकुल हाल[10] रहते हैं। मैं इत्तिफ़ाक़[11] करता हूँ कि इन तमाम बातों के ज़िम्मेदार हमारे गोरे आक़ा[12] और उनके एजेंट हैं। मगर इनका इलाज़ क्या है कि उनको उस हालत पर ले आएँ कि वह महसूस[13] करने लगें कि वह क्या हैं। इसका वाहिद ज़रिया[14] यह है कि तुम उन जैसी वज़ा-किता इख़्तियार[15] करो और जंटिलमैनी छोड़कर देहात का चक्कर लगाओ। कारखानों में डेरे डालो और उनकी हालत स्टडी करो और उनमें एहसास[16] पैदा करो। तुम

---

1. दुर्भाग्य। 2. कारण। 3. विदेशी तरीकों को। 4. विदेशी ही समझते हो। 5. रहन-सहन का ढंग। 6. आशिक, प्रेमी। 7. सहमत। 8. फरारी के दिन में। 9. दे दूँ। 10. फटेहाल। 11. सहमति प्रकट करना। 12. अंग्रेज मालिक। 13. अनुभव। 14. एक ही उपाय। 15. तौरतरीका। 16. जागृति।

कैथरीन ग्रांड मदर ऑफ रशिया की सवानेहउम्री[1] पढ़ो और वहाँ के नौजवानों की क़ुरबानियाँ[2] देखो। तुम कालर टाई और उम्दा सूट पहनकर लीडर ज़रूर बन सकते हो, मगर किसानों और मज़दूरों के लिए फाइदेमंद साबित नहीं हो सकते। *दीगर पॉलिटिकल जमाअतों से मुत्तहिद होकर काम करो और अपनी माद्दापरस्ती[3] से किनारा करो कि यह फ़िज़ूल है जो तुम्हें दूसरी ज़माअतों से अलग किए हुए हैं।* मेरे दिल में तुम्हारी इज़्ज़त है और मैं मरते हुए भी तुम्हारे सयासी मक़सद[4] से बिलकुल मुत्तफ़िक़[5] हूँ। मैं हिंदुस्तान की ऐसी आज़ादी का ख़्वाहिशमंद था जिसमें ग़रीब ख़ुश और आराम से रहते। ख़ुदा मेरे बाद वह दिन ज़ल्द आए जबकि छत्तरमंजिल लखनऊ में अब्दुल्ला मिस्त्री लोको वर्कशॉप और धनिया चमार, किसान भी मिस्टर ख़लीक़उज़्ज़मा और जगत नारायण मुल्ला व राजा साहब महमूदाबाद के सामने कुर्सी पर बैठे हुए नज़र पड़ें। मेरे कामरेडो, मेरे रिवोल्यूशनरी भाइयो—तुमसे मैं क्या कहूँ और तुमको क्या लिखूँ, बस यह तुम्हारे लिए क्या कुछ कम मुसर्रत[6] की बात होगी, जब सुनोगे कि तुम्हारा एक भाई हँसता हुआ फाँसी पर चला गया और मरते-मरते ख़ुश था। मैं ख़ूब जानता हूँ कि जो स्प्रिट तुम्हारा तबका[7] रखता है—चूँकि मुझको भी फ़ख़्र[8] है और अब बहुत ज़्यादा फ़ख़्र है कि एक सच्चा रिवोल्यूशनरी होकर मर रहा हूँ। मेरा पयाम[9] तुमको पहुँचाना फ़र्ज़ था, मैं ख़ुश हूँ—मसरूर हूँ, मैं उस सिपाही की तरह हूँ जो फायरिंग लाइन पर हँसता चला जा रहा हो और खंदकों में बैठा हुआ गा रहा हो। तुम्हें दो शेर हसरत मोहानी साहब[10] के लिख रहा हूँ—

जान को महवे ग़म[11] बना दिल को वफ़ा निहाद[12] कर,
बंद ये इश्क़[13] है तो यूँ कता रहे मुराद[14] कर।

---

1. जीवन चरित्र। 2. बलिदानों को देखो। 3. भौतिक पूजा। 4. राजनैतिक मान्यता। 5. सहमत। 6. प्रसन्नता। 7. समुदाय। 8. गर्व। 9. संदेश। 10. उर्दू के प्रसिद्ध कवि-देशभक्त। 11. जान को चिंतित। 12. वफादार। 13. आशिक। 14. आकांक्षा की राह को काट दे।

ऐ कि निज़ाते हिंद की दिल से है तुझको आरज़ू,[1]
हिम्मते सर बुलंद से[2] यास का इंसदाद कर।[3]

हजार दुख क्यों न आएँ—बहरे ज़ख़्ख़ार[4] दरमियान में मौजें मारें—आतिशी पहाड़[5] क्यों न हायल[6] हो जाएँ मगर ऐ आज़ादी के शेरो, अपने-अपने गरम ख़ून को मातृभूमि पर छिड़कते हुए और जानों को मातृवेदी पर क़ुर्बान करते हुए आगे बढ़े चले जाओ। क्या तुम ख़ुश न होंगे जब तुमको मालूम होगा कि हम हँसते हुए मर गए। मेरा वज़न ज़रूर कम हो गया है, और वह मेरे कम खाने की वजह से हो गया है। किसी डर या दहशत की वज़ह से नहीं हुआ है—और मैं कन्हाई लाल दत्त की तरह वजन न बढ़ा सका मगर हाँ ख़ुश हूँ, और बहुत ख़ुश हूँ। क्या मेरे लिए इससे बढ़कर कोई इज़्ज़त हो सकती है कि सबसे पहला और अव्वल मुसलमान हूँ जो आज़ादिए-वतन[7] की ख़ातिर फ़ाँसी पा रहा है—मेरे भाइयो! *मेरा सलाम लो और इस नामुकम्मल[8] काम को, जो हम से रह गया है, तुम पूरा करना।* तुम्हारे लिए यू. पी. में मैदाने-अमल[9] तैयार कर दिया, तुम्हारा काम जाने। इससे ज़्यादा उम्दा मौक़ा तुम्हारे हजार प्रोपेगंडे से न होता। स्कूल और कॉलेजों के तुलबा हमारी तरफ़ दौड़ रहे हैं, अब बहुत अर्से तक दिक्कत न होगी—

उठो-उठो सो रहे हो नाहक/पयामे बाँगे जरस[10] तो सुन लो,
बढ़ो कि कोई बुला रहा है/निशाने मंज़िल दिखा-दिखाकर।

ज़्यादा क्या लिखूँ, सलाम लो—और कमर हिम्मत बाँध लो और मैदाने-सियासी लीडरों मेरा सलाम क़बूल करो और तुम हम लोगों को उस नज़र से न देखना जिस नज़र से दुश्मनाने वतन और ख़ाइनीने क़ौम देखते थे। न हम डाकू थे, न क़ातिल—

कहाँ गया कोहेनूर हीरा/किधर गई हाय मेरी दौलत,
वह सबका सब लूटकर कि उलटा/हमीं को डाकू बता रहे हैं।

---

1. भारतीय गुलामी के उद्धार की आकांक्षा। 2. ऊँचा सर रखनेवाले साहस के द्वारा। 3. अनुत्साह को समाप्त कर। 4. भयानक समुद्र। 5. अग्नि का पहाड़। 6. आड़े आए। 7. देश की स्वतंत्रता। 8. अपूर्ण। 9. कार्यक्षेत्र। 10. घंटे की आवाज का संदेश।

हमीं को दिन-दहाड़े लूटा, फिर हमीं डाकू हैं । हमारे भाइयों और बहनों और बच्चों को जलियानवाला बाग में भून डाला और अब हमीं को कालस बलूट फैसले में लिखा जाता है । अगर हम ऐसे हैं तो वह कैसे हैं और किस ख़िताब से पुकारे जाने के क़ाबिल हैं, उन्होंने हिंदुस्तान का सुहाग लूट लिया, जिन्होंने लाखों बहादुरों को अपनी गरज के लिए मेसोपोटामिया और फ्रांस के मैदान में सुलवा दिया, खूँख्वार जानवर, ज़ालिम दरिंदे वह हैं या कि हम ? हम बेवश थे, कमजोर थे, सब कुछ सुन लिया और ऐ वतनी भाइयो यह सब तुमने सुनवाया । आओ फिर मुत्तहिद हो जाओ, फिर मैदाने अमल में कूद पड़ो और *मुकम्मल आज़ादी का ऐलान कर दो ।* अच्छा अब मैं रुख़सत होता हूँ और हमेशा के लिए ख़ैरबाद कहता हूँ । ख़ुदा तुम्हारे साथ हो और फ़िज़ायेहिंद पर आज़ादी का झंडा जल्द लहराए । मेरे पास न वह ताक़त है कि हिमालय की चोटी पर पहुँचकर एक ऐसी आवाज़ निकालूँ जो हर शख़्स को बेदार[1] कर दे और न वह असबाब है कि जिससे फिर तुम्हारे दिल मुश्ताइल[2] कर दूँ कि तुम उसी जोश से आगे बढ़कर खड़े हो जाओ जैसे सन् 20 व 21 में थे । मैं चंद सुतूर के बाद रुख़सत होता हूँ ।

To every man upon this earth,
Death cometh soon or late,
But (then) how can a man die better,
Than facing fearful odds,
For the ashes of his fathers and,
Temples of his God,

बाद को मैं अपने उन भाइयों से रुख़सत शुक्रिए के साथ होता हूँ जिन्होंने हमारी मदद ज़ाहिर तौर पर की या पोशीदा[3] । और यक़ीन दिलाऊँगा कि अशफ़ाक़ आखिरी दम तक सच्चा रहा और खुशी-खुशी मर गया—और ख़्यानते-वतनी[4] का उस पर कोई नहीं लगाया जा सकता । वतनी भाइयों से गुज़ारिश है कि मेरे बाद मेरे भाइयों को वक्त

1. जागृत । 2. भड़काऊँ । 3. छिपी हुई । 4. वतन को लूटनेवाले गद्दार ।

ज़रूरत न भूलें और उनकी मदद करें और उनका ख़्याल करें ।

वतन पर मर मिटनेवाला
अशफ़ाक़ वारसी 'हसरत'
अज, फैजाबाद जेल ।

मेरी तहरीर मेरे वतनी भाइयों तक पहुँच जाए। ख्वाह विद्यार्थी जी अखबार के जरिए से या अंग्रेजी, हिंदी, उर्दू में छापकर कांग्रेस के अय्याम में तकसीम क़रा दें, मशकूर[1] हूँगा। मेरा सलाम कबूल करें और मेरे भाइयों को न वह कभी भूलें और न मेरे वतनी भाई फ़रामोश[2] करें। अलविदा !

अशफ़ाक़उल्ला वारसी 'हसरत'
फैज़ाबाद जेल
19 दिसंबर, 1927

फाँसी पर जाने से पूर्व उन्होंने यह भी कहा था—"भारत माता के रंगमंच पर अपना पार्ट अब हम अदा कर चुके । हमने गलत-सही जो कुछ किया, वह स्वतंत्रता-प्राप्ति की भावना से किया । हमारे इस काम की कोई प्रशंसा करेगा तो कोई निंदा । किंतु हमारे साहस और वीरता की प्रशंसा हमारे दुश्मनों तक को करनी पड़ी है । क्रांतिकारी बड़े वीर योद्धा और बड़े अच्छे वेदांती होते हैं । वे सदैव अपने देश की भलाई सोचा करते हैं । लोग कहते हैं कि हम देश को भयत्रस्त करते हैं, किंतु बात ऐसी नहीं है । इतनी लंबी मियाद तक हमारा मुकदमा चला मगर हमने किसी एक गवाह तक को भयग्रस्त करने की चेष्टा नहीं की, न किसी मुख़बिर को गोली मारी । हम चाहते तो किसी गवाह, किसी ख़ुफ़िया पुलिस के अधिकारी या किसी अन्य ऐसे आदमी को मार सकते थे । किंतु यह हमारा उद्देश्य नहीं था । हम तो कन्हाईलाल दत्त, ख़ुदीराम बोस, गोपी मोहन साहा आदि की स्मृति में फाँसी पर चढ़ जाना चाहते थे ।

1. कृतज्ञ । 2. न भुलाएँ ।

"जजों ने हमें निर्दय, बर्बर, मानव-कलंक आदि विशेषणों से याद किया है । किंतु हम पूछते हैं कि क्या इन जजों ने जलियाँवाला बाग में गोली चलाते देखा या सुना ? क्या उसने निरस्त्र भारतीयों—स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध सब पर गोलियाँ नहीं चलाई थीं । कितने जजों ने उसे इन विशेषणों से विभूषित किया । फिर क्या यह मजाक हमारे ही साथ उड़ाने को है ।

"भारतीय भाइयो, आप कोई हों, चाहे जिस धर्म या संप्रदाय के अनुयायी हों, परंतु आप देशहित में एक होकर योग दीजिए । आप लोग व्यर्थ में लड़-झगड़ रहे हैं । सब धर्म एक हैं, रास्ते चाहे भिन्न-भिन्न हों, परंतु लक्ष्य सबका एक ही है । फिर यह झगड़ा-बखेड़ा क्यों ?? हम मरनेवाले काकोरी के अभियुक्तों के लिए आप लोग एक हो जाइए और *सब मिलकर नौकरशाही का मुकाबला कीजिए ।* यह सोचकर कि सात करोड़ मुसलमान भारतवासियों में मैं सबसे पहला मुसलमान हूँ जो भारत माता की स्वतंत्रता के लिए फाँसी पर चढ़ रहा हूँ, मैं मन-ही-मन अभिमान का अनुभव कर रहा हूँ । किंतु मैं यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं हत्यारा नहीं था, जैसा कि मुझे साबित किया गया है ।

"अब मैं विदा होता हूँ । ईश्वर आप सबका भला करे । इस अवसर पर ऐनुद्दीन मजिस्ट्रेट, श्री खैरातअली पब्लिक प्रासीक्यूटर, सी. आई. डी. के अधिकारी खासकर खान बहादुर तसद्दुक हुसैन साहब तथा अन्य गवाहों को धन्यवाद देना अनुचित न होगा, क्योंकि इन्हीं की कृपा से हमको यह मान-मर्यादा प्राप्त हुई । मेरे परिवार में आज तक देश-सेवा के लिए कोई त्याग न हुआ था । अब यह कलंक छूट जाएगा । अंत में अपने साथी अभियुक्तों तथा मुखबिरों और इकबाली मुलज़िमों से भी 'वंदे' करता हूँ ।

"सबको आखिरी सलाम । भारतवर्ष सुखी हो मेरे भाई आनंद लाभ करें ।"

अशफ़ाक़ चले गए, लेकिन वे देशवासियों के नाम जो संदेश छोड़ गए, उससे हम कुछ ग्रहण कर सकें तो अच्छा है ।

स्मृति

19 दिसंबर, 1927 को उत्तर प्रदेश के जिस नगर गोरखपुर में रामप्रसाद बिस्मिल को फाँसी दी गई थी, वहाँ उनकी स्मृति में आयोजित एक बैठक की खबर दो-तीन दिन पुरानी हो जाने के कारण वहाँ के एक दैनिक ने छापने से इनकार कर दिया था । तो क्या ये कोई सनसनीखेज समाचार है जो कुछ विलंब से छपने पर अपना आकर्षण खो देगा । परंतु इसका उत्तर उन पत्रकारों और संवाददाताओं के पास नहीं है जो बलात्कार के बाद हत्या की जानेवाली औरत के क्षत-विक्षत शरीर की तसवीर को महज प्रदर्शन के लिए छाप रहे हैं । उस वातावरण या अपराधियों के प्रति उनके मन में कोई घृणा नहीं होती और न ही उस औरत या उसके परिवार वालों के प्रति कोई सहानुभूति ही, जिसमें आए दिन ऐसी घटनाएँ हो रही हैं ।

यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि शहीदों और क्रांतिकारियों तथा उनके सिद्धांतों को समाज जो इतनी जल्दी भूलता जा रहा है, उसमें दोष लेखकों और पत्रकारों का भी है । यही कारण है कि गोरखपुर विश्वविद्यालय के कुछ छात्र जब रामप्रसाद बिस्मिल के नाम पर एक छात्रावास के नामकरण की माँग करते हैं तो वहाँ के अधिकारी पूछते हैं कि ये बिस्मिल कौन थे और क्या करते थे ? मन ग्लानि से भर जाता है कि क्या वे बलिदान व्यर्थ चले गए । बस्ती जिले के एक भाई ने इस पर बड़े ही खेदपूर्ण शब्दों में कहा था कि बिस्मिल के नाम पर कुछ करने की चाह

लिए रहनेवाले कुछ छात्र संगठन तथा नेता गोरखपुर विश्वविद्यालय के उस बौद्धिक दिवालियेपन का क्या करें, जहाँ "बिस्मिल कौन थे ?" का स्पष्टीकरण नहीं हो सका । सीनेट ने तब पास करा दिया कि अमुक छात्रावास का नाम बिस्मिल के नाम पर रखा दिया जाए परंतु विश्वविद्यालय के अनुदान आयोग ने यह टिप्पणी लगा ही दी कि बिस्मिल के बारे में पूरा विवरण भेजा जाए । यह रहस्य फिर भी बना रहा कि कुलपति कार्यालय बिस्मिल को जानता था या नहीं । मैंने यह भी सुना था कि एक बार कुछ लोग गोरखपुर के एक जिलाधिकारी को काकोरी शहीद दिवस पर आमंत्रित करने गए तो जिलाधिकारी हैरत में पड़ गए और जब नहीं रहा गया तो पूछ ही बैठे—"कौन हैं ये बिस्मिल ?"

गोरखपुर में ही राप्ती के तट पर जहाँ बिस्मिल का दाह-संस्कार किया गया था, आज तक उनकी समाधि नहीं बन सकी । गोरखपुर जेल का फाँसीघर वर्षों बाद आज भी उपेक्षित पड़ा है । बिस्मिल के अपने ही नगर शाहजहाँपुर में बिस्मिल को जाननेवाले कितने लोग हैं ? हाँ, चुनावों के दिन निकट आते ही यहाँ के नेताओं का शहीदों के प्रति प्रेम उमड़ पड़ता है और देखते-ही-देखते सड़कों पर रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ और ठाकुर रोशनसिंह के नामों पर द्वारों का निर्माण करा दिया जाता है । बिस्मिल जिस मोहल्ले के रहनेवाले थे, वहाँ अब उनका कोई मकान नहीं है । 1981 में अपने शहर में मेरे द्वारा आयोजित अखिल भारतीय क्रांतिकारी सम्मेलन में दूर-दूर से आए अतिथियों ने पूछा कि बिस्मिल का घर कौन-सा है ? यह कहते हुए मेरी आँखें शर्म से झुक जाती हैं कि बिस्मिल की शहादत के बाद माँ मूलमती को घोर आर्थिक संकट में अपना घर और अपने शहीद बेटे बिस्मिल के स्मृति-चिह्न सोने के तीन बटन बेचने को मजबूर होना पड़ा था । एक शिकायत आज भी है कि क्या मेरे नगर की जनता उस समय चाहती तो उस राष्ट्रीय स्मारक की सुरक्षा नहीं कर सकती थी ? पर वैसा नहीं हुआ । यहाँ के दो गुट इस प्रश्न पर तो झगड़ सकते हैं कि बिस्मिल के मोहल्ले के एक उद्यान में बिस्मिल की नहीं, गौतम बुद्ध की मूर्ति लगेगी और इसके लिए कुछ लोग जेलें भरने या खून बहा देने को भी तैयार हो

जाते हैं । बिस्मिल की मूर्ति लगाने के विरोध में दलित पैंथर रातों-रात शहर की दीवारें रंग देते हैं । ऐसे में मैं सोचने पर विवश हो जाता हूँ कि क्या दलित पैंथर जानते हैं कि बिस्मिल ने अंतिम समय फाँसी की कोठरी में बैठकर यह अभिलाषा प्रकट की थी । उन्होंने कहा था कि ईश्वर उन्हें पुनः भारतभूमि पर जन्म दे, ताकि वे अपने नए शरीर से दलितों का उद्धार कर सकें । मुझे विश्वास है कि मेरी आत्मा मातृभूमि तथा दीन-संतति के लिए नए उत्साह और ओज के साथ काम करने के लिए शीघ्र ही फिर लौट आएगी ।

मैं नहीं समझ पाता कि दलित पैंथर बिस्मिल की मूर्ति लगाने का विरोध क्यों कर रहे थे । मुझे कई बार उन लोगों की बुद्धि पर भी तरस आया जो बिस्मिल की मूर्ति न लगने देने पर खून बहा देने की बातें रात के धुँधलके में मुझसे कह जाते थे । बिस्मिल के निर्जीव स्मारक के लिए 'संघर्ष' करनेवाले यही लोग एक दिन उस जिंदा स्मारक की रक्षा और देखभाल न कर सके थे, जिसकी कोख ने बिस्मिल जैसे महान क्रांतिकारी बेटे को न केवल जन्म दिया था, अपितु हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ जाने को प्रेरित और प्रोत्साहित भी किया था ।

मैंने कई बार काकोरी शहीदों की स्मृति को जिंदा रखने और उनके आदर्शों के प्रचार-प्रसार की जरूरत पर बल दिया है, क्योंकि कट्टर आर्यसमाजी पं. रामप्रसाद बिस्मिल और इस्लाम के पाबंद अशफ़ाक़-उल्ला ख़ाँ का एक साथ रहना, आजादी के लिए लड़ना, प्रलोभनों के विरुद्ध अडिग रहना और अंत में एक साथ फाँसी पर चढ़ जाना एक ऐसी मिसाल है, जो देशप्रेम, सांप्रदायिक सद्भाव और राष्ट्रीय एकता की प्रेरणा देती रहेगी ।

अशफ़ाक़ की मज़ार मेरे शहर के एक उजाड़ कब्रिस्तान में है । इस मुहल्ले का नाम अब अशफ़ाक़ के नाम पर रख दिया गया है । जब कभी मैं उधर से गुजरता हूँ तो शहीद की मज़ार की दयनीय दशा देखकर मन को कष्ट होता है । फाँसी के बाद अशफ़ाक़उल्ला की लाश को इसी कब्रिस्तान में लाकर दफना दिया गया । अशफ़ाक़ की शहादत पर श्रद्धेय गणेशशंकर विद्यार्थी ने उनके भाई रियासतउल्ला ख़ाँ से कहा था—"इनकी कच्ची कब्र बनवा देना, हम पुख़्ता करा देंगे और इनका

मकबरा हम ऐसा बनाएँगे कि जिसकी नजीर यू. पी. में न होगी ?''

विद्यार्थी जी ने तब मोहनलाल सक्सेना के द्वारा दो सौ रुपए भेज दिए, जिससे उनकी कब्र पक्की करा दी गई। पर कानपुर के हिंदू-मुस्लिम दंगे में विद्यार्थी जी के शहीद हो जाने से अशफ़ाक़उल्ला के मकबरे का कार्य पूरा नहीं हो सका । स्वर्गीय पुरुषोत्तमदास टंडन की भी यह अभिलाषा थी कि शहीदे-वतन का एक अच्छा स्मारक बनाया जाए पर स्वतंत्र भारत में यह संभव नहीं हुआ ।

अशफ़ाक़ के परिवार के लोगों की यह विशेष इच्छा है कि सरकार शहीदे-वतन का एक सुंदर मकबरा तो बनवा ही दे । इस संबंध में सरकार ने जिला प्रशासन से एक बार पूछताछ भी की थी; पर मामला अभी ज्यों-का-त्यों पड़ा है । कई बार इस मज़ार पर राजनीतिज्ञ आते हैं, फूल-मालाएँ चढ़ाई जाती हैं, जय-जयकार होती है और वादे भी किए जाते हैं । पर अभी तक यह उजाड़ कब्रिस्तान शहीद की यादगार के पुनर्निर्माण की प्रतीक्षा कर रहा है । अशफ़ाक़ से किए गए वादे के अनुसार अशफ़ाक़ के वकील कृपाशंकर हजेला 1929 में इस मज़ार पर आए । फिर तो जब भी वे शाहजहाँपुर आते, इस जगह पर आना नहीं भूलते ।

मेरे निमंत्रण पर प्रख्यात साहित्यकार और चिंतक श्री हंसराज रहबर 13 नवंबर, 1983 को शाहजहाँपुर पधारे तो अशफ़ाक़ की मज़ार की स्थिति देखकर उन्हें बहुत दुख हुआ । उन्होंने समाचार-पत्र के लिए लिखा—''शहीदों के मज़ारों पर हर बरस मेले जैसा वहाँ एक भी चिह्न नहीं है । एक गेट जरूर बना हुआ है लेकिन चहारदीवारी और पार्क इत्यादि न होने से वह भी बेकार और महत्त्वहीन दिखाई पड़ता है । अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ ने रामप्रसाद बिस्मिल और रोशनसिंह के साथ फाँसी के फंदे को चूमा था । यों वह सचमुच राष्ट्रीय एकता और धर्मनिरपेक्षता का प्रतीक हैं । लाखों रुपया खर्च करके सर तेजबहादुर सप्रू और गालिब जैसे खुशामदखोर लोगों की तो यादगारें बनाई गईं, लेकिन एक शहीद के मज़ार की उपेक्षा क्यों ?''

मध्य प्रदेश के एक मित्र ने भी एक बार पत्र लिखकर अशफ़ाक़ के मज़ार के बारे मुझसे जानना चाहा था और यह भी पूछा था कि आप

अपने यहाँ स्कूलों और संस्थाओं में काकोरी शहीद दिवस मनाते ही होंगे । उस अवसर पर शहीदों के छोटे-छोटे ट्रेक्ट छपवाकर उनके सिद्धांतों और आदर्शों का प्रचार किया जा सकता है और नई पीढ़ी के लिए यह उपयोगी भी है । उस दिन यह बताने में मुझे लज्जा का अनुभव हुआ था कि हम इस जनपद के निवासी उनकी स्मृति को ठीक से सँजो कर रख भी नहीं पाए । हाँ, नगरपालिका के प्रांगण में काकोरी के तीन शहीदों की मूर्तियाँ और एक 'शहीद द्वार' बनाकर हमने अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली । ये दोनों शहीद-स्मारक वर्ष-भर उपेक्षित पड़े रहते हैं और इनकी ओर फिल्मी पोस्टर लगानेवालों के अतिरिक्त किसी का ध्यान नहीं जाता । प्रसन्नता की बात है कि पिछले दो वर्षों से शहीद अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ के पौत्र चि. अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ ने अपने ही प्रयासों से 'काकोरी शहीद दिवस' मनाने की परंपरा डाली है और वे इसे जारी रखेंगे । लेकिन शहीदे-वतन के मज़ार पर लगनेवाले इन मेलों की सार्थकता तभी है जब नई पीढ़ी उनके आदर्शों से प्रेरणा लेकर देश के नवनिर्माण में जुट जाए । यहाँ यह बता देना जरूरी है कि शहीदे-वतन के पौत्र का नाम अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ के नाम पर ही रखा गया था, ताकि उनकी स्मृति सुरक्षित रहे और परिवार में शहादत की रोशनी जलती रहे ।

अशफ़ाक़उल्ला की स्मृति में श्रद्धेय दादा बनारसीदास चतुर्वेदी के संपादन में 19 दिसंबर, 1969 को उर्दू में 'यादगारे अशफ़ाक़' पुस्तक प्रकाशित हुई थी और संतोष की बात यह है कि अशफ़ाक़उल्ला के बड़े भाई रियासतउल्ला ख़ाँ उस समय जीवित थे और उसे देख-भर सके । आगे चलकर दादा चतुर्वेदी ने मुझसे कई बार कहा कि मैं उस पुस्तक को पुनः छपवा लूँ, पर वैसा करना मेरे लिए संभव नहीं हो पाया । इस पुस्तक का हिंदी संस्करण भी आगरा के शिवलाल अग्रवाल ने प्रकाशित किया था जो दो वर्ष पूर्व समाप्त हो चुका है । यदि वह पुनर्मुद्रित होकर लोगों में पहुँच सके तो बड़ी बात होगी ।

उज्जैन के सुकवि श्री श्रीकृष्ण 'सरल' ने शहीद अशफ़ाक़ पर काव्य की रचना की, जिसका विमोचन मैंने अपने नगर में शहीदे-वतन के पौत्र चि. अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ से करवाया था । इस कार्यक्रम का आयोजन

मेरे अनुरोध पर नगर के प्रसिद्ध समाजसेवी श्री काशीनाथ कपूर उर्फ गप्पी बाबू ने किया था । भाई रामसिंह बघेले ने भी एक छोटा ट्रेक्ट लिखकर आम जनता तक अशफ़ाक़उल्ला का जीवनवृत्त पहुँचाने का सराहनीय कार्य किया है। वे मेरे अग्रज हैं और विगत बीसेक वर्षों से शहीदों और क्रांतिकारियों के मिशन में लगे हुए हैं ।

दादा चतुर्वेदी जी की यह भी इच्छा थी कि शहीद अशफ़ाक़ के तमन्चे को भी, अगर वह कहीं मिल जाए, तो सुरक्षित करा देना चाहिए अन्यथा ऐतिहासिक चीजें तो नष्ट हो गई या होने जा रही हैं । चि. अशफ़ाक़उल्ला के पास पवित्र कुरान की वह प्रति स्मृति के रूप में सुरक्षित है, जिसे फाँसी पर जाते समय अशफ़ाक़ ने अपने गले में लटकाया था । उसके पृष्ठों पर अशफ़ाक़ की हस्तलिपि भी सुरक्षित है ।

काकोरी के शहीदों की स्मृति में लखनऊ और काकोरी में भी स्मारकों का निर्माण किया गया, जिनमें काकोरी के घटनास्थलवाला स्मारक अभी भी अधूरा पड़ा है । श्रीयुत प्रेमकिशन खन्ना ने काकोरी शहीद विद्यालय बनवाया तथा एक और बड़ी योजना को वे कार्यान्वित करना चाहते हैं ।

मुझे स्मरण है कि काकोरी-शहीद-बलिदान-अर्ध-शताब्दी के अवसर पर स्वर्गीय चंद्रभानु गुप्त की माँग पर सरकार की ओर से तत्कालीन स्वायत्त मंत्री सत्यप्रकाश मालवीय ने घोषणा की थी कि वे रोशनउद्दौला कचहरी प्रांगण में शहीद अशफ़ाक़उल्ला का एक स्मारक बनवाएँगे । इसी कचहरी में अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ और बख़्शी जी का पूरक मुकदमा चला था । उस समय यह भी सुना था कि काकोरी के प्रस्तावित स्मारक-स्थल के इर्द-गिर्द पाँच गाँवों का नामकरण रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ, ठाकुर रोशनसिंह, राजेंद्रनाथ लाहिड़ी और चंद्रशेखर आज़ाद के नाम पर कर दिया गया है, पर गाँववालों को इसकी कोई जानकारी नहीं है ।

फ़ैज़ाबाद के लोग धन्यवाद के पात्र हैं । उन्होंने प्रतिवर्ष शहीद दिवस मनाने की परंपरा को बनाए रखा है और जेल में अशफ़ाक़उल्ला की एक प्रतिमा की स्थापना भी हो गई है । वह स्थान भी स्मृति के रूप में

सुरक्षित कर दिया गया है जहाँ अशफ़ाक़उल्ला को फाँसी पर चढ़ाया गया था । उनके वे शब्द वहाँ आज भी गूँजते हैं—

कुछ आरज़ू नहीं है, है आरज़ू तो यह है,
रख दे कोई ज़रा-सी ख़ाके वतन क़फ़न में ।

● ● ●

राजकमल पेपरबैक्स

सुधीर विद्यार्थी

अशफ़ाक़ उल्ला और उनका युग

भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास-लेखकों में सुपरिचित सुधीर विद्यार्थी की यह पुस्तक काकोरी कांड के सर्वाधिक युवा और तेजस्वी शहीद अशफ़ाक़ उल्ला के महान अवदान का दस्तावेजी मूल्यांकन है।

काकोरी कांड का समूचे भारतीय स्वाधीनता-संग्राम में एक विशेष महत्व है। यह केवल ब्रिटिश सरकार पर ही राजनीतिक हमला नहीं था, बल्कि 1921 के असहयोग आंदोलन के स्थगन से उपजे राजनीतिक शून्य को भरने का भी प्रयास था। साथ ही इस कांड की एक सकारात्मक भूमिका और भी थी। तत्कालीन सांप्रदायिक माहौल के खिलाफ राष्ट्रीयता को बढ़ावा देने में इससे भारी प्रेरणा मिली। राजेंद्रनाथ लाहिड़ी, ठाकुर रोशनसिंह और रामप्रसाद बिस्मिल के साथ अशफ़ाक़ उल्ला का बलिदान भारतीय जनता के लिए अविस्मरणीय हो उठा। अपनी चिट्ठियों, बयानों और नज़्मों से उन्होंने देश को एक नई राह पकड़ने की प्रेरणा देते हुए क्रांतिकारी आंदोलन में पहली बार मार्क्सवादी सिद्धांतों की हिमायत की।

वस्तुतः अशफ़ाक़ उल्ला के क्रांतिकारी जीवन-संघर्ष के साथ-साथ यह कृति काकोरी युग के समूचे राजनीतिक वातावरण, वैचारिकता और क्रांतिकारियों की ज्वलंत राष्ट्रनिष्ठा को तथ्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करती है।

राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली पटना

मूल्य

ISBN : 81-7178-196-9